स्वास्थ्य का हक

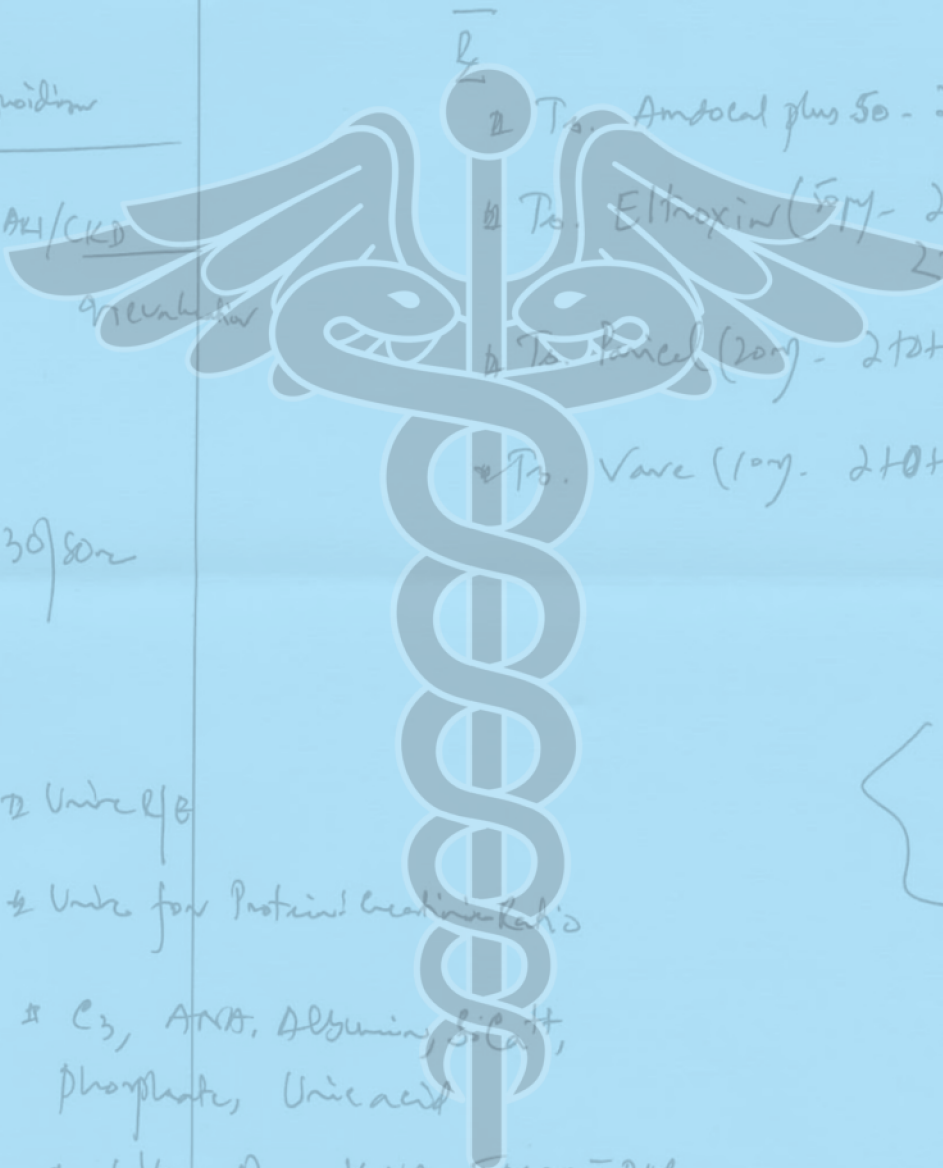

चिन्मय मिश्र

किताब का नाम	:	**स्वास्थ्य का हक**
लेखक	:	चिन्मय मिश्र
संपादन	:	राकेश कुमार मालवीय
सहयोग	:	सचिन कुमार जैन, राकेश दीवान, सौमित्र राय, अरविंद मिश्र, आरती पाराशर, अंजली आचार्य, संतोष वैष्णव, गुंजन, मनोज गुप्ता, कमलेश नामदेव और रवि
प्रकाशक	:	विकास संवाद ई 7/226, प्रथम तल, धनवंतरी काम्पलेक्स के सामने, अरेरा कॉलोनी, शाहपुरा, भोपाल E-mail : vikassamvad@gmail.com Web : www.mediaforrights.org , www.vssmp.org
मुद्रक	:	एमएसपी आफसेट, एमपी नगर, भोपाल
डिजाइन	:	सुबोध शुक्ला
कॉपी	:	500
वर्ष	:	2016
सहयोग राशि	:	चालीस रूपए
वित्तीय सहयोग	:	चाइल्ड राइट्स एंड यू (क्राय)

निवेदन : इस पुस्तिका में स्वास्थ्य संबंधी कानून, अधिनियम और संवैधानिक प्रावधानों को सावधानीपूर्वक संकलित किया गया है। इसे आप जानकारी के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं, किसी तरह के भ्रम की स्थिति में मूल कानून, अधिनियम का संदर्भ लेने की अनुशंसा की जाती है।

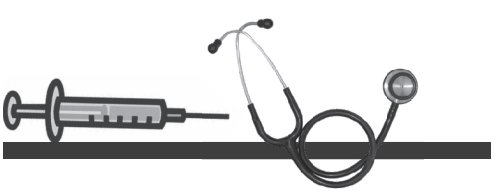

LokLF; dk gd

Hkkjr esa LokLF; % ,d nLrkost

fpUe; feJ

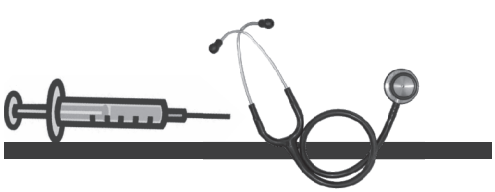

çLrkouk

भारत में स्वास्थ्य की स्थिति की दयनीयता हम सबके सामने है। हमारा देश और हम यानी नागरिक हमेशा दो अतियों पर खड़े दिखाई देते हैं। स्वास्थ्य या चिकित्सा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। एक ओर हम यह दावा करते हैं कि हमारे यहाँ विश्वस्तरीय चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध हैं और मेडिकल टूरिज्म को बढ़ावा देने की बात भी करते हैं। हमारी व्यापारिक व वाणिज्यिक संस्थाएं जैसे सीआईआई, फिक्की या एसोचौम, इस क्षेत्र को सर्वाधिक तेजी से बढ़ने वाला उद्योग बता रही हैं और भारत सरकार सारे विश्व में डंका पीटकर अपने यहां दुनियाभर के मरीजों को न्यौत रही है, वहीं दूसरी ओर भारत की अधिकांश यानी 80 प्रतिशत आबादी है, जिसके पास अपने जीवन के लिए पौष्टिक भोजन तक नहीं है। इसके बावजूद उसे अब तक उपलब्ध सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं से भी वंचित किया गया है। उनके साथ हमेशा दोयम दर्जे के नागरिक जैसा व्यवहार होता है, यहां तक कि उपचार में भी हम छत्तीसगढ़ में नसबंदी में बड़ी लापरवाही के बाद दर्जनों महिलाओं की मृत्यु के समाचार अब भी सुनते हैं, कभी मध्यप्रदेश, पंजाब, हरियाणा जैसे तमाम प्रदेशों में मोतियाबिंद के बाद फैले संक्रमण से लोगों के अंधे होने की करूण दास्तां सुनते हैं। किसी प्रदेश में हजारों महिलाओं के गर्भाशय बिना वाजिब कारणों के निकाल लिए जाते हैं, तो कहीं (इंसेफेलाइटिस) कालाजार से होने वाली मौतें लगातार बढ़ती जा रही हैं।

कहावत है 'कोढ़ में खाज' कुछ ऐसा ही हमारे देश में हो रहा है। एक ओर उपचार में लापरवाही तो दूसरी ओर इस पेशे में कदाचार/दुराचार के उदाहरण, चिकिसकों द्वारा ड्रग ट्रायल, दवा कंपनियों के खर्चों पर देश–विदेश की यात्रा, पैथोलॉजी ''कट'' (कमीशन), अवैध रूप से अंग प्रत्यारोपण, अवांछित दवाईयाँ लिखना या गैरजरूरी शल्य चिकित्सा करने के रूप में सामने आ रहे हैं। इतना ही नहीं इस पेशे से जुड़े कतिपय चिकित्सकों ने तो कन्या भ्रूण हत्या के माध्यम से भारत की जनसंख्या के आंकड़े ही बदल दिए हैं। तमाम और भी बातें हैं जिनका लेखा–जोखा किया जाना जरूरी है। जैसे भारत की आबादी का करीब 4.5 प्रतिशत हिस्सा प्रतिवर्ष लोक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच न होने की वजह से गरीबी रेखा से नीचे जा रहा है और भारत की ग्रामीण और शहरी सम्पत्ति की एक तिहाई से अधिक बिक्री स्वास्थ्य सेवाओं को प्राप्त करने के लिए होती है।

यह पुस्तिका मूलतः चिकित्सा के क्षेत्र में हो रही लापरवाही को पहचानने के उद्देश्य से तैयार की गई है। इसमें इस बात को भी सामने लाने का प्रयास किया गया है कि भारतीय परम्परिक चिकित्सा पद्धति में पुरातनकाल से निगरानी व दंड की व्यवस्था मौजूद रही है। साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि ब्रिटिश उपनिवेश के पूरी तरह से भारत पर छा जाने के पहले हम एक स्वस्थ व समृद्ध राष्ट्र थे। इस पुस्तिका के पहले भाग में चिकित्सकीय लापरवाही से लेकर स्वास्थ्य के बाजार और कानूनी व्यवस्था तक के तमाम ऐसे पहलू, जिसे हम अक्सर वंचित रह जाते हैं, का समावेश है। पुस्तिका में हम चिकित्सा निगरानी के इतिहास से लेकर वर्तमान तक की यात्रा में बहुत ही संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत कर पाए हैं। पुस्तिका के दूसरे भाग में उन चुनिंदा कानूनों का संक्षिप्त विवरण है जिनके माध्यम से न्यायालय या प्रशासन से मरीज या उसके परिजन अपने स्वास्थ्य अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

इस कार्य में हमें अमूल्य निधि का अविस्मरणीय सहयोग मिला है। साथ ही राकेश मालवीय के असीम धैर्य से भी परिचय हुआ, जिन्होंने इसे लिखवाकर ही दम लिया। हमेशा की तरह सचिन अपने मौन से कोंचते रहे। बहरहाल यह पुस्तिका आपके सामने है। कोशिश रहेगी कि इस यात्रा को और आगे बढ़ाया जाए।

चिन्मय मिश्र

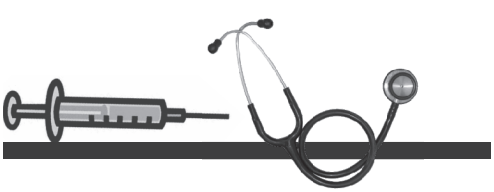

Hkkjr e LokLF; lok,

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की वर्तमान स्थिति को लेकर काफी उहापोह की स्थिति बनी रहती है। देश में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, इसमें सार्वजनिक व निजी क्षेत्र की भागीदारी, स्वास्थ्य उपचार की बढ़ती लागत, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा की बदहाली जैसे तमाम मुद्दे दिन–रात चर्चा में छाए रहते हैं। उपचार की बढ़ती लागत लगातार चर्चा का विषय बनी हुई है। यहाँ तक कि विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी यह मानना है कि भारत की 4.5 प्रतिशत आबादी (4 करोड़ से ज्यादा) प्रतिवर्ष उपचार के खर्च की आपूर्ति करने की प्रक्रिया में गरीबी रेखा (बीपीएल) से नीचे चली जाती है।

> गांवों में बिकने वाली संपत्ति का बड़ा हिस्सा (30 से 45 प्रतिशत तक) इसी वजह से बेचा जाता है। इतनी विषम परिस्थितियों के बीच स्वास्थ्य सम्बन्धी जिन मुद्दों पर सबसे कम ध्यान जाता है वह है ''स्वास्थ्य क्षेत्र में बढ़ती लापरवाही''। जाहिर सी बात है कि 125 करोड़ से अधिक की आबादी वाले देश में इस मुद्दे पर गंभीरता से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

वही दूसरी ओर आम भारतीय अपने चिकित्सक को कमोवेश दूसरे भगवान का दर्जा देता है। ऐसे में उसके खिलाफ कुछ कह पाने का मानस वह नहीं बना पाता। चिकित्सक की छोटी–मोटी गलतियों और लापरवाहियों की अनदेखी कई बार भारी पड़ जाती है। वहीं चिकित्सकीय लापरवाही एवं चूक की जांच की प्रक्रिया भी अत्यंत भेदभावपूर्ण एवं एकतरफा है। इस वजह से अधिकांश मामलों में चिकित्सक और उनके सहायक बेदाग छूट जाते हैं। इस सबके बावजूद ऐसे तमाम जरिए मौजूद हैं जिनके माध्यम से लापरवाही या चूक की वजह से हुए नुकसान का उचित मुआवजा प्राप्त हो सकता है और जिम्मेदार व्यक्तियों संस्थानों को कठघरे में खड़ा किया जा सकता है।

उपरोक्त संदर्भित विषय के विस्तार में जाने से पहले भारत में स्वास्थ्य के इतिहास और विभिन्न कालखंडों में चिकित्सकीय प्रणाली को संचालित करने के दिशा–निर्देशों पर गौर कर लेना आवश्यक है।

भारत में चिकित्सा सुविधाएं एवं उनकी निगरानी व्यवस्था का इतिहास

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि कोई एक देश सार्वभौमिकता, कानूनों, क्षेत्रफल, जनसंख्या, सामाजिक विविधता आदि के सम्मिलन से ही परिपूर्णता प्राप्त करता है, लेकिन यह निर्विवाद है कि नागरिक ही किसी राष्ट्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संपत्ति होते हैं। यदि किसी राष्ट्र को अपनी आर्थिक, सामाजिक व सामरिक स्थिति को बेहतर बनाना है तो उसके नागरिकों का स्वस्थ होना अनिवार्य है। यह उसके आंतरिक स्थायित्व के लिए भी अनिवार्य है।

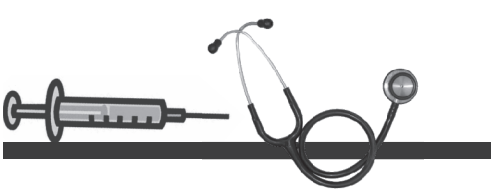

भारत के परिप्रेक्ष्य में उपरोक्त स्थिति की विवेचना करने पर बहुत से सनसनीखेज तथ्य हमारे सामने आते हैं। वैसे भारत में चिकित्सा विज्ञान और उसका निगरानी तंत्र सहस्त्राब्दियों से मौजूद है। अतएव भारत की औपनिवेशिक गुलामी की जकड़ में आने से पहले और उसके सुदीर्घ अतीत पर भी निगाह डालना आवश्यक है।

अतीत से

भारत में अंग्रेजी राज के शुरूआती दौर में जिन प्रमुख व्यक्तियों ने यहाँ की सामाजिक स्थिति का दस्तावेजीकरण किया उनमें से एक थे वाल्टर हेमिल्टन। उन्होंने भारत का पहला गजेटियर, सन् 1820 ई में लिखा था। उनके अनुसार 'वेस्टइंडीज और अन्य उष्ण कटिबंधीय (ट्रापिकल) देशों के निवासी की तुलना में ''हिन्दुस्तान'' को एक बहुत ही स्वस्थ राष्ट्र माना जा सकता है। यहां ऐसी तमाम बीमारियों से बहुत ही कम पीड़ित हैं जो कि यूरोप में विध्वंसकारी सिद्ध हो रही हैं। इस देश के भीतर कैंसर तो कमावेश अपरिचित ही है और फेफड़े का क्षयरोग या तपेदिक भी बहुत कम होता है। गलसुआ तो यहां दुर्लभ है तथा पेट में पथरी बनने का अनुभव भी कभी–कभार ही कहीं सुनाई पड़ता है। हालांकि यहाँ पर विद्यमान जलवायु की वजह से गठिया, वात, वाय रोग के हमले को पूरी तरह से रोक पाना संभव नहीं है, लेकिन इसके बावजूद ठंडे देशों के मुकाबले इनकी मात्रा और गंभीरता दोनों ही बहुत कम हैं। इन क्षेत्रों में गंभीर गठिया भी काफी दुर्लभ है, लेकिन इसके दीर्घकालिक प्रमाणों को यूरोप की बनिस्पत यहाँ ज्यादा आसानी से ठीक या उपचारित किया जा सकता है। इतना ही नहीं येलो फीवर और प्लेग जैसे संक्रामक रोगों का इस भीड़ भरी आबादी में न पाया जाना कमोवेश सौभाग्य का विषय है।'

इस चर्चा को अब थोड़ा और आगे बढ़ाते हैं। वाल्टर बेंजामिन के उपरोक्त विवरण के करीब 4 साल बाद यानि सन 1824 में बिशप रेगिनाल्ड हेबेर ने अपने यात्रा वृतांत 'नरेटिव ऑफ ए जर्नी फ्रॉम कोलकाता टू बाम्बे' में लिखा था '' इस देश में यौन रोगों (एसटीडी) को फिरंगी रोग के नाम से ही जाना जाता है, जिसे पुर्तगाली अपने साथ यहां लाए थे (तब ग्रामीण बोलचाल में पुर्तगालियों को फिरंगी, डच (हालैंड) निवासी, वालांडा और अंग्रेजों को विलायती कहा जाता था।"

यहाँ पर एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य पर गौर करना आवश्यक है। उपरोक्त वर्णन के करीब 100 वर्ष पश्चात् सन् 1911–21 का दशक भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के चरमोत्कर्ष का काल था। इस अवधि में भारत में औसत आयु गिरकर 20.1 वर्ष पर पहुँच गई थी। दूसरे शब्दों में कहें तो यदि वयस्कता की उम्र 21 वर्ष मानी जाए तो उस दौरान भारत की औसत आबादी वयस्क होने के पहले ही काल कलवित हो जाती थी। मात्र एक शताब्दी में स्वास्थ्य को लेकर भारत आकाश से पाताल में पहुँच गया। यह गिरावट सिर्फ आयु तक सीमित नहीं थी। उन्नीसवी शताब्दी के पहले तीन दशकों (यानि 1830 तक) भारत का विश्व व्यापार में योगदान 25 प्रतिशत से ज्यादा रहता था। परन्तु सन् 1921 तक आते–आते यह 1 (एक) प्रतिशत से भी कम रह गया था। इसका सीधा सा अर्थ है कि भारत की आर्थिक समृद्धि यहाँ के नागरिकों के स्वास्थ्य के साथ सीधे–सीधे जुड़ी थी। साथ ही साथ एक अन्य तथ्य पर भी गौर करना आवश्यक है

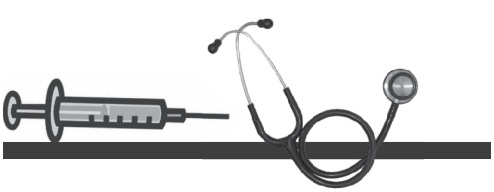

कि दिन में सूर्य की किरणों की अधिक देर तक उपलब्धता की वजह से यहाँ के नागरिक ज्यादा स्वस्थ थे और यह देश हमेशा से औरों के मुकाबले अधिक जनसंख्या वाला भी था।

उपरोक्त विवरण हमें अपनी गुलामी और स्वास्थ्य के संबंधों को समझने में सहायता देंगे। साथ ही यह हमारी वर्तमान स्वास्थ्य स्थितियों और अर्थव्यवस्था के उतार–चढ़ाव जिसमें औद्योगिक विकास भी शामिल है, की नए दृष्टिकोण से समीक्षा का नजरिया भी सुझाता है।

उपचार की विधियाँ संभवतः मानवता के उद्‌गम से ही प्रचलित रही होंगी। समय, काल और मनुष्य के विकास के अनुरूप ही इनमें परिवर्तन भी आते रहे हैं। भारत में आयुर्वेद का प्रचलन वैदिक काल के पूर्व हो चुका था। इसलिए ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में स्वास्थ्य एवं बीमारियों के अनेक संदर्भ मिलते हैं। इतना ही नहीं इनके उपचार को लेकर भी एक परिपूर्ण साहित्य व संहिता हमारे देश में मौजूद रही है। इसके अलावा भारत में पारम्परिक चिकित्सा का एक अन्य अनुपांग यूनानी भी मौजूद रहा है। वैसे यह चिकित्सा पद्धति यूनान में विकसित हुई थी, लेकिन भारत में इसका आगमन अरबों के साथ हुआ है। इसके अलावा दक्षिण भारत में एक अन्य पारम्परिक चिकित्सा पद्धति सिद्ध (अगस्ति पद्धति) अभी भी प्रचलन में है। इसके अतिरिक्त होम्योपैथी भी भारत में काफी लोकप्रिय है।

आधुनिक भारतीय समाज में यह गलतफहमी पैदा की जा रही है कि भारत की पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों में लापरवाही से निपटने एवं निगरानी की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। जबकि वस्तुस्थिति सदा से इसके विपरीत ही रही है। प्रत्येक काल एवं पद्धति में चिकित्सकों के लिए दिशा–निर्देश व बीमार व्यक्तियों के अधिकारों के संरक्षण के साथ ही साथ मानक बनाए रखने और लापरवाहियों को लेकर नियम और आचार संहिता जैसी व्यवस्थाएं विद्यमान रही हैं।

परन्तु बदली परिस्थितियों में कमोवेश एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली ही भारत में उपचार का मूल बनती जा रही है। इस प्रणाली या पद्धति ने बाकी सभी पारम्परिक पद्धतियों को हाशिये पर ला दिया है। इसलिए इसे आधुनिक चिकित्सा पद्धति की संज्ञा भी दी जाती है। वस्तुतः चुनौतियों से निपटने के लिए स्वयं को समकालीन बनाती रहती है, उस अर्थ में हम कह सकते हैं कि सभी चिकित्सा पद्धतियाँ एक हद तक आधुनिक ही हैं। भारत में एलोपैथिक चिकित्सा सेवा की शुरूआत सन् 1600 ईस्वी में तब हुई थी जबकि ईस्ट इंडिया कम्पनी के जहाजों के पहले बेड़े का भारत में आगमन हुआ था। इस बेड़े के साथ जहाज सर्जन (Ship Surgeon) भी आए थे। वैसे भारत में पहला चिकित्सा विभाग सन् 1764 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के सैनिकों एवं कर्मचारियों को चिकित्सा सेवा प्रदान करने को स्थापित किया गया था। यानि अब से करीब 251 वर्ष पूर्व भारत में एलोपैथी चिकित्सा पद्धति से उपचार प्रारंभ हो चुका था।

पुरातन काल में चिकित्सा

हम सभी इस बात से तो सहमत होंगे कि मानव सभ्यता का कोई भी काल गलतियों और लापरवाहियों से

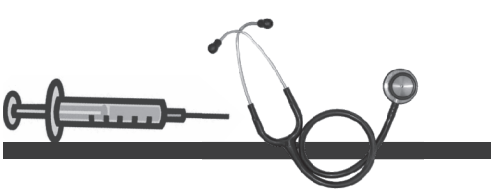

अछूता नहीं रहा। अतएव स्वास्थ्य का क्षेत्र भी इससे अलग नहीं हो सकता। भारत के पुरातन साहित्य के कई ग्रंथों जैसे व्यवहारकल्पतरू व विवदरत्नाकर में लापरवाही से सम्बन्धित कानूनों का उल्लेख मिलता है। इसके अलवा अनेक पुरातन धर्मग्रंथों में स्वास्थ्य सम्बन्धी लापरवाही से संबन्धित कानूनों या नियमों की बात भी की गई थी।

सर्वप्रथम मनुस्मृति (800 ई.पू. से 600 ई.पू.) में तो स्वास्थ्य सम्बन्धी लापरवाही को लेकर सीधे–सीधे यह श्लोक प्राप्त होता हैं।

चिकित्सकानां सर्वेषा मिथ्याप्रचरतां दभः:

अभिनुषेशे प्रनामों, मानुषेषु तु मध्यम: इत् !!

इसका अर्थ है, '' ऐसे वैद्य जो कि अपने मरीजों का गलत उपचार करेंगे, वे घोर जुर्माने के भागी होंगे। पशुओं के गलत उपचार के मामले में यह न्यूनतम होगा परन्तु मनुष्यों के मामले में मध्यम अर्थदंड दिया जाएगा।''

कौटिल्य अर्थशास्त्र (400 ई.पू. से 300 ई.पू.) तो इस विषय को बहुत आगे तक व्याख्यायित करता है। इस ग्रंथ में आयुर्वेद चिकित्सा करने से सम्बन्धित कानून एवं नियमों को बहुत अच्छे से व्याख्यायित किया गया है। इसके अनुसार उपचार करने हेतु वैद्यों को राजा से अनुमति लेना अनिवार्य है। (इसे वर्तमान पंजीयक के समकक्ष रखा जा सकता है।) इतना ही नहीं मरीज के उपचार के दौरान हुई लापरवाही के लिए यदि वह जिम्मेदार होता है तो उसे दंडित किया जाएगा। यदि कोई भी वैद्य बिना स्थानीय प्राधिकारी जिसे ''गोपा'' या ''स्थानिक'' कहा जाता था, को जानकारी दिए बिना किसी व्यक्ति का उपचार करता है तो उसे दंडित किया जाएगा। इसके अलावा यदि चिकित्सक बिना अधिकारियों को बताए कोई ऐसा उपचार करता है और ऐसे मामले में यदि मृत्यु हो जाती है तो उसे हिंसा मानते हुए न्यूनतम दंड दिया जाएगा। परन्तु यदि इस प्रक्रिया में हुई मृत्यु का कारण लापरवाही सिद्ध होता है तो मध्यम जुर्माना लगाया जाएगा। यदि उपचार के दौरान हुई लापरवाही से अपंगता हो जाती है तो न्यायाधीश इसे शारीरिक चोट पहुँचाने के अपराध की तरह सुनेगा।

बृहस्पति स्मृति (200 ई.–400 ई.) में स्पष्ट उल्लेख है कि ऐसा वैद्य जो कि औषधियों और उनके प्रमाणों एवं बीमारियों की प्रकृति से अनभिज्ञ है और इसके बावजूद उपचार हेतु मरीज से धन ले लेता है तो उसे चोर के जैसी सजा दी जाएगी (बृहस्पतिस्मृति 8–360) ।

यज्ञवालिका स्मृति (300 ई.पू. से 100 ई.पू.) में भी चिकित्सकीय कदाचार के नियमन को लेकर तमाम श्लोक हैं। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति यदि छद्म वैद्य (चिकित्सक) सिद्ध होता है तो उस पर जानवरों के उपचार करने पर कम दण्ड लगेगा। परन्तु मनुष्यों पर उपचार करते पाये जाने पर वह मध्यम दण्ड का भागी होगा और यदि वह राजपरिवार का उपचार करते पाया गया तो उसे अधिकतम दंड भोगना होगा।

एक अन्य श्लोक में उल्लेख है, जो भी शक्ति औषधियों, तेल, नमक, इत्र, खाद्यान्न, शक्कर और ऐसी अन्य वस्तुओं में

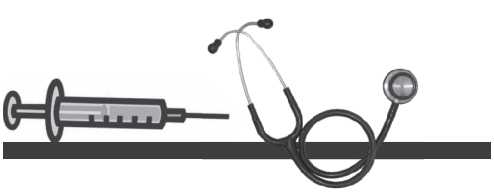

मिलावट करता है और उनकी बिक्री करता है तो उस पर 16 पण (तत्कालीन मुद्रा) का जुर्माना होगा।

यदि कोई चिकित्सक किसी घायल व्यक्ति का या या किसी आकस्मिकता(महामारी आदि)का उपचार बिना गोपा को बताए करता है तो वह दंड का भागी होता था, इसकी तुलना हम वर्तमान मेडिकोलीगल प्रक्रिया से कर सकते है।

सुश्रुत संहिता में भी स्पष्ट उल्लेख है कि चिकित्सक को अपना कार्य (प्रेक्टिस) आरंभ करने के पूर्व राजा से अनुमति लेना अनिवार्य है। बिना व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किए कोई भी व्यक्ति उपचार करने के लिए अयोग्य होगा। गौरतलब है कि सीखने के उद्देश्य से यह व्यावहारिक परीक्षण विभिन्न पदार्थों एवं वस्तुओं पर होता था जिससे कि वैद्य को मानव शरीर पर प्रयोग करने की आवश्यकता ही न पड़े। इस संहिता में यह निर्देश भी दिए गए हैं कि वैद्य (चिकित्सक) अच्छी तरह से बैठने के बाद अपने मरीज को देखकर, छूकर एवं प्रश्न पूछकर उसका परीक्षण करें। उसे बीमारी की ठीक से पहचान कर लेना चाहिए और उसका उपचार तभी प्रारंभ करना चाहिए जबकि वह उस बीमारी का उपचार करने में सक्षम हो।

चरक संहिता, जिसे आयुर्वेद से उपचार का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है, ने गलत उपचार के लिए ''मिथ्या'' शब्द का उपयोग किया है। वहीं सुश्रुत संहिता में तो इस हेतु स्पष्ट तौर पर ''मिथ्योपचार'' शब्द का प्रयोग किया गया है और इसके लिए तमाम प्रकार के दंड का प्रावधान भी किया गया है। इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि आर्थिक दंड राजा द्वारा लगाया जाएगा और इसे राज्य के खजाने में जमा किया जाएगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पुरातन काल में भारत में चिकित्सा क्षेत्र के नियमन के लिए निश्चित कानूनी सिद्धान्त मौजूद थे। इसमें वैद्य के ऊपर यह बाध्यता थी कि उसकी ग्रंथों, अनुभव, शुद्धता आदि पर सम्पूर्णता महारत हो। उसे एक निश्चित समयावधि तक प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा। इतना ही नहीं उसके लिए वैद्य बनने के पूर्व इसका औपचारिक एवं व्यावहारिक अध्ययन करना भी अनिवार्य था। तत्पश्चात् ही उसे अपना कार्य करने के लिए राजा से अनुमति लेने की पात्रता थी।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण हमें यह आभास करा देता है कि भारत में उपचार प्रणाली एक नियमन के माध्यम से ही संचालित होती थी और बिना विशिष्ट प्रशिक्षण के इसे प्रयोग में लाना दंडनीय अपराध भी था। वाल्टर हेमिल्टन के द्वारा सन् 1920 में लिखे गए भारत के पहले गजेटियर देश में स्वास्थ्य की स्थिति को लेकर की गई टिप्पणी (जिसका उल्लेख हमने इस अध्ययन की शुरूआत में किया था।) से स्पष्ट हो जाता है कि हम एक ऐसी स्वास्थ्य चिकित्सा प्रणाली के संवाहक थे,जो कि युगों तक हमें निरोग बनाने में सफल रही थी।

मध्ययुग में चिकित्सा

मध्यकालीन भारत में आयुर्वेद के प्रचलन के साथ ही साथ यहाँ पर आए अरब निवासियों ने उपचार की यूनानी पद्धति की शुरूआत की। दिल्ली सल्तनत, खिलजी, तुगलक एवं मुगल सम्राटों ने अपने अपने शासन काल में इसके विशेषज्ञों को राज्य संरक्षण प्रदान किया। निःसंदेह इस काल को इस चिकित्सा पद्धति का स्वर्णकाल नहीं कहा जा सकता। परन्तु इस काल में भी हकीमों द्वारा परीक्षण करने और उनके

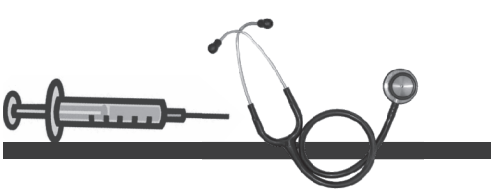

पंजीयन की एक प्रणाली भी मौजूद थी। इतना ही नहीं इस पद्धति से उपचार करने हेतु अनुमति लेना भी अनिवार्य था। औषधियों में मिलावट एवं नकली औषधियों की रोकथाम पूरा विभाग इस हेतु स्थापित किया गया था। 11वीं शताब्दी में अब्बासी शासनकाल में कुछ विशिष्ट दवाओं की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और निगरानी के लिए एक स्वतंत्र अफसर जिसे ''ईहतिसाब'' पुकारा जाता था, की नियुक्ति कर दी गई थी। यह प्रक्रिया या नियमन प्रणाली मुगलकाल तक कायम रही। उपचार से संबधित एक हदीस (हिदायत) में भी उल्लेख है कि '' ऐसा व्यक्ति जो कि औषधि विज्ञान नहीं जानता और वह मरीज का उपचार करता है तो वह मुआवजा देने के लिए जवाबदेह होगा।"

ब्रिटिश या औपनिवेशिक काल में चिकित्सा

जैसा कि हम पहले जान चुके हैं कि भारत का पश्चिमी या एलौपैथिक चिकित्सा पद्धति से पहला साक्षात्कार सन् 1600 में ही हो गया था। उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी अपने शुरूआती दौर में थी और सिर्फ व्यापार करने की मनःस्थिति से ही भारत आई थी। परन्तु समय बीतने के साथ और अपनी राजनैतिक कुटिलता के चलते उन्हें यह समझ में आया कि भारत के साथ यदि लाभप्रद व दीर्घावधि तक व्यापार करते रहना है, तो उसे यहाँ पर अपना स्थायी बंदोबस्त करना ही होगा। अठारहवीं शताब्दी की शुरूआत में उनके पैर जमना शुरू हो गए। उन्होंने भारत के दक्षिणी एवं पूर्वी समुद्री मार्गों से प्रवेश कर समुद्रतटों के समीप अपनी बस्तियों का निर्माण प्रारंभ कर दिया। लालच के सहारे उन्होंने आपसी फूट पैदा की और सन् 1757 की प्लासी की पहली लड़ाई के माध्यम से बंगाल पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार भारत में अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हो गई।

कर्मचारियों व फौजियों की बढ़ती संख्या के मद्देनजर अब उन्हें तमाम तरह की स्थायी प्रशासनिक संस्थानों की स्थापना की आवश्यकता भी महसूस होने लगी। साथ ही स्वास्थ्य को लेकर भी अनेक उलझनें सामने आने लगीं थीं। वैसे भी उनका पारम्परिक भारतीय चिकित्सा पद्धति पर भी बहुत विश्वास नहीं था। इसलिए उन्होंने सन् 1764 में बंगाल में पहला चिकित्सा विभाग स्थापित कर अपने सैन्यकर्मियों एवं कर्मचारियों को स्वास्थ्य सेवाएं देना प्रारंभ कर दिया । इसकी वजह से भारत में आधुनिक या पश्चिमी चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहन मिला।

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के प्रारंभ में आधुनिक चिकित्सा पद्धति से उपचार करने और करवाने वाले, दोनों की ही संख्या सीमित थी,खासकर भारतीयों की। कुछ समय पश्चात् अस्पतालों की स्थापना के बाद धीरे–धीरे इसने देशज चिकित्सा प्रणाली पर बढ़त हासिल कर ली। तकरीबन 100 वर्षों तक बिना किसी विशेष नियमन के इस चिकित्सा पद्धति के माध्यम से उपचार होता रहा। बढ़ती सामाजिक पैठ के चलते इस बात की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी कि ऐसे लोगों को रोका जाए जो व्यवस्थित प्रशिक्षण और क्षमता के बिना उपचार कर रहे हैं। सन 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात भारत का राजकाज ईस्ट इंडिया कम्पनी से हटकर सीधे ब्रिटिश सरकार के हाथ में चला गया। इसी वर्ष (ब्रिटिश) चिकित्सा अधिनियम–1858 बनाया गया। इसके अन्तर्गत ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी हिस्से में

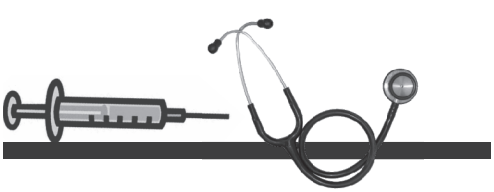

चिकित्सा विज्ञान में डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों का "मेडिकल रजिस्टर" तैयार किया गया। यदि स्थानीय कानून उन्हें प्रेक्टिस करने की अनुमति देते हों और "ब्रिटिश मेडिकल काउंसिल उनके डिप्लोमा को मान्यता देती है तो ही उन्हें उपचार करने योग्य माना जाता था।" बॉम्बे चिकित्सा अधिनियम–1912 के माध्यम से पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली में दक्ष व्यक्तियों के रजिस्ट्रेशन और अनैतिक गतिविधियों एवं लापरवाही में लिप्त पाए जाने पर उनका नाम सूची से हटाये जाने का प्रावधान था। इसके पश्चात् सन् 1933 में ''इंडियन मेडिकल काउंसिल एक्ट–1933'' लागू किया गया। गौरतलब है इसके पहले 'दि मेडिकल डिग्री एक्ट–1916' लागू हो चुका था। इसमें झूठी डिग्री या बिना डिग्री के प्रेक्टिस करने वालों के खिलाफ तमाम प्रावधान थे। इसके पश्चात् दंत चिकित्सा को लेकर पहला कानून ''द बंगाल डेंटिस्ट एक्ट–1939'' प्रभावशील हुआ। इसमें पहली बार दंत चिकित्सकों के प्रशिक्षण व आचारसंहिता को लेकर प्रावधान किये गए थे। वैसे इसके कुछ वर्ष पहले सन् 1935 के ''गवर्मेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट (भारत सरकार अधिनियम–1935)'' के अन्तर्गत भारतीय स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता बनाए रखने का जिम्मा संबंधित मंत्रियों को सौंप दिया गया था।

आजादी के पश्चात

अभी तक हम भारतीय चिकित्सा व्यवस्था के तीन कालों की संक्षिप्त विवेचना कर चुके हैं। पहले दो कालखंडों अर्थात् अंग्रेजों के भारत पर अनाधिकृत कब्जे के पूर्व का बेहतरीन स्थितियाँ सन् 1920 में वाल्टर हेमिल्टन द्वारा लिखे गए पहले गजेटियर से स्पष्ट हो चुकी है। इसके 100 साल बाद यानी सन 1911–21 की जनगणना (इसे भी अंग्रेज शासकों ने ही अंजाम दिया था) में भारतीयों की औसत आयु का मात्र 20.1 वर्ष रह जाना हमें साफ बतला रहा है कि औपनिवेशिक काल में भारत में स्वास्थ्य की स्थिति रसातल में पहुँच चुकी थी। अतएव आजादी मिलने के तुरन्त बाद इस पर विशेष ध्यान देना नई सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकताओं में से एक था। अंतरिम सरकार ने कार्यभार ग्रहण करने के तुरन्त बाद केन्द्र एवं राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन के माध्यम से सरकार को राष्ट्र में स्वास्थ्य की स्थिति की पूरी जानकारी प्राप्त हुई तथा यह भी समझ में आया कि यहाँ किस तरह की स्वास्थ्य सुविधाओं की आवश्यकता है और इसे उपलब्ध करवाने के लिए किस प्रकार के संगठन या संस्थानों की आवश्यकता है। अगले ही वर्ष यानी सन् 1948 में दूसरे स्वास्थ्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें चिकित्सा एवं सहायक अधिकारियों के प्रशिक्षण सम्बन्धी मापदंड तय किये गए। इसी के साथ अखिल भारतीय चिकित्सा रजिस्टर (All India Medical Register) तैयार किए जाने पर भी सहमति बनी। इसके पश्चात् सन् 1952 में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद का गठन हुआ। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री इसके अध्यक्ष थे एवं राज्यों के स्वास्थ्य मंत्री राज्य स्वास्थ्य परिषदों के अध्यक्ष थे। तत्पश्चात् सन् 1956 में नया भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1956 (Indian Medical Council Act 1956) बना और इसके माध्यम से स्वास्थ्य को लेकर एक केन्द्रीय परिषद का गठन हुआ। इसमें चिकित्सकों के कर्तव्यों को पूरी तरह से परिभाषित करते हुए प्रावधान किया गया कि मरीज की उपेक्षा (लापरवाही) नहीं की जानी चाहिए। बॉम्बे होम्योंपैथी एण्ड बायो केमिकल प्रेक्टिसनर्स एक्ट, 1959

के लागू हो जाने के बाद यह चिकित्सा प्रणाली भी निगरानी के अंतर्गत आ गई थी। इसी तरह की महाराष्ट्र मेडिकल प्रेक्टिश्नर्स एक्ट, 1961 ने आयुर्वेदिक व यूनानी पद्धति में कार्य कर रहे चिकित्सकों के रजिस्ट्रेशन का प्रावधान सुगम बनाया। भारतीय चिकित्सा प्रणाली पर नियंत्रण का एक नया औजार उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के माध्यम से प्रकाश में आया। इसे लेकर अभी भी काफी बहस जारी हैंद्य परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने तो सन् 1995 में ही इसे लेकर स्थिति स्पष्ट कर दी थी। अपने निर्णय में न्यायालय ने कहा था ''एक चिकित्सक द्वारा इसके संभाव्य उपयोगकर्ता को किसी प्रतिफल की आशा में उपलब्ध कराई गई सेवाएं इसकी परिभाषा में आती हैं।''

नए कानून और उसकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या के पश्चात भारत में स्वास्थ्य सेवाओं और उसे उपलब्ध कराने वालों यथा चिकित्सकों, सहायकों, तकनीशियनों एवं अस्पतालों को लेकर आम व्यक्ति, जो कि कमोवेश अब उपभोक्ता की श्रेणी में आ गया था, अपने अधिकारों को लेकर सचेत हुआ। आज स्वास्थ्य क्षेत्र में हो रही लापरवाहियों को सामने लाने, मुआवजा दिलवाने एवं स्वास्थ्य क्षेत्रों में विकसित हुई जागरूकता व व्याप्त डर भी इसी वजह से काफी हद तह दूर हुआ है।

LokLF; dk vf/kdkj ,o LokLF; lok

ऐसा नहीं है कि स्वास्थ्य के अधिकार एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक आम आदमी की पहुँच को लेकर व्याप्त असमानताएं सिर्फ भारत या विकासशील एवं अल्प विकसित देशों तक ही सीमित हैं। दुनिया के अधिकांश देश, जिसमें अमेरिका भी शामिल है, में भी इसकी पहुँच एवं लापरवाही को लेकर भारत जैसा ही बवाल मचा हुआ है। सारे विश्व में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता को लेकर पिछले तकरीबन चार दशकों से अत्यधिक बैचेनी दिखाई दे रही है। सन् 1977 में सोवियत रूस के 'आल्माआटा' में हुए विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन में यह निश्चित हुआ था कि सरकारों एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) का मुख्य सामाजिक लक्ष्य यह होना चाहिए कि सन् 2000 तक विश्व के सभी लोगों को स्वास्थ्य का ऐसा स्तर उपलब्ध हो जाए, जिससे कि सामाजिक एवं आर्थिक उत्पादक जीवन जी सकें।'' इसे सामान्य तौर पर 'अल्माआटा' घोषणापत्र कहा जाता है। इसमें, ''सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य'' की बात कही गई थी, लेकिन अब तक यह लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया। इसके बाद हमारे सामने आए सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य। इनके अंतर्गत सन् 2015 तक सभी को स्वास्थ्य उपलब्ध करवाने की बात कहीं गई थी। परन्तु अभी भारत जैसी विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाएं भी अपने तीन चौथाई से ज्यादा नागरिकों को उनकी जरूरत के मुताबिक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाने में असमर्थ रही है। सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों की आंशिक सफलताओं को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस वर्ष सतत् विकास लक्ष्य 2030 पर आम सहमति प्राप्त की। गौरतलब है कि सन् 2016 से प्रारंभ होने वाला यह कार्यक्रम किसी भी देश पर बाध्यकारी नहीं है। अतएव सन् 2030 तक स्वास्थ्य की क्या स्थिति होगी, इसकी भविष्यवाणी करना आसान नहीं है।

वहीं दूसरी ओर सारी दुनिया स्वास्थ्य के अधिकार को मूलभूत मानवाधिकार के रूप में स्वीकार करती है। साथ ही स्वास्थ्य की देखरेख को एक अनिवार्य सार्वजनिक सेवा के रूप में मान्यता देते हुए इस पर राजी है कि जीवन के अधिकार एवं अन्य मूल मानवाधिकारों को पूरी तरह से प्राप्त करने हेतु इसकी आवश्यकता है। भारत संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणापत्र (1948), आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आईसीईएससीआर) 1966 एवं अल्माआटा, ''सभी के लिए स्वास्थ्य'' घोषणा पत्र (1978) पर हस्ताक्षर कर चुका है और साफ तौर पर स्वास्थ्य के अधिकार को मान्यता दे चुका है। हालांकि भारतीय संविधान में स्वास्थ्य नागरिकों का मौलिक अधिकार नहीं है, लेकिन सामाजिक और आर्थिक न्याय के व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए इसका समावेश होना आवश्यक है। वैसे भारतीय संविधान की प्रस्तावना में राज्य को निर्देशित किया गया है कि वह अपने नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक न्याय दिलाने की दिशा में कार्य करेगा। अर्थात् इसमें राज्य द्वारा अपने नागरिकों के स्वास्थ्य की देखभाल एवं बेहतरी भी शामिल है। इसे जीवन की रक्षा एवं व्यक्तिगत

स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों से भी जोड़कर देखा जा सकता है।

इसे संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों एवं अनुच्छेद–21 में दिए गए प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण से जोड़कर देखा जाना चाहिए, जिसमें स्पष्ट उल्लेख है कि, ''किसी भी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।'' इतना ही नहीं सन् 1970 के दशक को प्रारंभ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में अस्तित्व का अधिकार और न मारे जाने का अधिकार ही मुख्य रूप से सामने आते थे। परन्तु इस दशक के अंत तक इसमें स्वास्थ्यकर एवं प्रभावशाली स्वास्थ्य सेवा सुविधाओं को शामिल कर इसे और व्यापक बना दिया। संविधान में वर्णित राज्य की नीति निदेशक तत्व के अंतर्गत अनुच्छेद 47 में लिखा है कि, पोषाहार स्तर एवं जीवनस्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य राज्य, अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवनस्तर को ऊंचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य, विशिष्टतया मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकर औषधियों के, औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा। इससे राज्य द्वारा स्वास्थ्य के क्षेत्र में बरती जानी वाली किसी भी लापरवाही को लेकर संविधान में निहित राज्य के नीति निदेशक तत्वों को बहुत स्पष्ट तौर पर निर्देशित किया गया है। इसके अलावा राज्य के नीति निदेशक तत्व के अनुच्छेद 38 में भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थापना की गई है। 'राज्य विशिष्टतया आय की असमानता को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।'

> अनुच्छेद–38 बताता है कि 'राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा। राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे। भरसक प्रभावी रूप से स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।'

उपरोक्त दिशा–निर्देश राज्य को स्वास्थ्य सेवाओं की सभी तक पहुंच और उसकी गुणवत्ता के लिए स्पष्ट तौर पर इशारा कर रहे हैं। आज स्वास्थ्य की स्थिति अर्थात उसकी पहुंच को लेकर तमाम विवाद हमारे सामने आ रहे हैं। सार्वजनिक या निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर निर्भरता भी चर्चा का प्रमुख विषय है, परंतु इस पुस्तिका में हम उपरोक्त विषय पर गौर न करते हुए इस क्षेत्र में घटित लापरवाही को लेकर कानूनी प्रावधानों को लेकर ही चर्चा कर रहे हैं। बहरहाल इस विषय की गंभीरता को देखते हुए इसके संदर्भ में इसी बात को समझने के लिए हमें संविधान के अनुच्छेद 39 राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व की कंडिका ड पर ध्यान देना आवश्यक है। इसमें लिखा है कि पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों। इसका सीधा सा अर्थ यही है कि स्वास्थ्य राज्य द्वारा अपनाई जाने वाली नीतियों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

fpfdRlh; ykijokgh dh orZeku fLFkfr

भारत में जैसे–जैसे चिकित्सकीय सुविधाओं का प्रसार एवं परिष्कार होता जा रहा है, वैसे–वैसे इसे लेकर आम जनता में जागरुकता भी बढ़ती जा रही है। एक बड़े जनसमुदाय में चिकित्सा सेवाओं की गुणवत्ता को लेकर प्रश्न खड़े हो रहे हैं और मरीजों में भी सेवाओं को लेकर असंतोष व्याप्त होता जा रहा है। चिकित्सा क्षेत्र में बढ़ती व्यावसायिकता के चलते अब कानूनी हस्तक्षेप भी बढ़ता जा रहा है।

चिकित्सकीय लापरवाही का अर्थ

चूंकि हम इस पूरे दस्तावेज को कानूनी तौर तरीकों की पहचान के नजरिए से तैयार कर रहे हैं अतएव कुछ शब्दों को प्रारंभिक दौर में ही समझ लेना अनिवार्य है। जब हम किसी चिकित्सकीय मुद्दे को लेकर उठे असंतोष या असमंजस पर बात करेंगे तो हमारे जेहन में दो शब्द उठेंगे, पहला है लापरवाही और दूसरा है कदाचार अथवा दुराचार। इसलिए हमें यह समझ लेना चाहिए लापरवाही से आशय होता है कि हम जो सेवाएं किसी को प्रदान कर रहे हैं उसकी ओर पूरी तरह से ध्यान नहीं देना या सामने वाले की उपेक्षा करना, यह कमोवेश कदाचार या दुराचार से कमतर की स्थिति है। दुराचार में तो नीयत पर ही प्रश्न उठ जाता है। अतएव चिकित्सकीय लापरवाही की पड़ताल करते समय हम इस बारीक रेखा का पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिए। यानी चिकित्सकीय लापरवाही एक चिकित्सक द्वारा अपने मरीज के प्रति बरती उपेक्षा या ध्यान नहीं देने से घटती है। चिकित्सकीय लापरवाही को एक विशिष्ट लापरवाही कहा जा सकता है क्योंकि यह एक विशिष्ट व्यवसायजन्य लापरवाही है। विशेष बात यह है की इस प्रकार की लापरवाही करने वाले व्यक्ति के पास विशिष्ट या विशेष कौशल होता है। उसी विशिष्ट कौशल की वजह से उसकी समाज में एक पृथक पहचान होती है। जिसकी वजह से कई बार वह साफ बच भी जाता है। लेकिन कानून की नजर में यह अन्य लापरवाही से किसी भी प्रकार से अलग नहीं है। सामान्यतया चिकित्सकीय लापरवाही को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है :

1. असावधानियां लापरवाहीपूर्ण आचरण या व्यवहार
2. किसी सामान्य कानून या अध्यादेश के माध्यम से सुश्रुषा सेवा संबंधी कर्तव्य का उल्लंघन या अवहेलना
3. ऐसी मनस्थिति जो कि आपकी मंशा (नीयत) के विपरीत हो

लापरवाही एवं अनुचित मंशा या आचरण अलग–अलग स्थितियां हैं। किसी भी कानूनी प्रक्रिया में जाने के लिए उपरोक्त दो में से किसी एक परिस्थिति की मौजूदगी अनिवार्य है। इसके पश्चात् ही अनुचित कृत्य करने वाले व्यक्ति की जवाबदारी तय की जा सकती है।

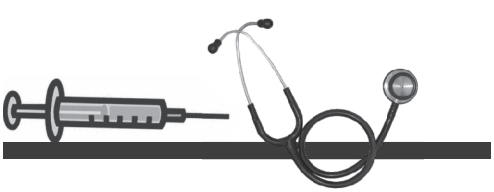

जानबूझकर अनुचित कार्य या इरादतन गलती करने वाले से आशय है कि ऐसा व्यक्ति जो कि नुकसान पहुँचाना चाहता है।

जबकि लापरवाही का कार्य करने वाले व्यक्ति से आशय है जिसने इस बीमारी दूर करने के लिए पूरा प्रयत्न नहीं किया। लापरवाही जानबूझकर किया गया अपराध नहीं है। वरन इसका अर्थ है कि चिकित्सक ने अपने कार्य के प्रति या तो उदासीनता दिखाई या असावधानी बरती जिसके कारण कुछ ऐसा घटित हो गया जैसा कि सामान्य तौर पर नहीं होना चाहिए था।

असावधानी या लापरवाहीपूर्ण आचरण

सामान्यतौर पर यह कहा जा सकता है कि असावधान या लापरवाह वह व्यक्ति होता है जो कि अपनी उन गतिविधियों को लेकर यथोचित चिंतित नहीं रहता, जिसकी वजह से दूसरों को नुकसान पहुँच सकता है। इस तरह के आचरण को सीधे–सीधे अपने कर्तव्यों के उल्लंघन की संज्ञा दी जा सकती है, लेकिन इसका सीधा सा अर्थ है कि गलती करने वाले द्वारा लापरवाहीपूर्ण व्यवहार करना। सामान्य भाषा में कहें तो असावधानीपूर्ण आचरण से की गयी लापरवाही कर्मठता या सचेतना की विरोधाभासी है। तत्वतः प्रत्येक चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि उसे अत्यंत सावधानीपूर्वक तरीके से अपने मरीज का उपचार करना चाहिए।

सेवा हेतु तय कर्तव्यों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप घटित लापरवाही

लापरवाही और कर्तव्य का गहरा आपसी अंतर्संबंध है। इसे लेकर तमाम तरह की विवेचनाएँ की जा सकती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने तर्क के आधार पर लापरवाही को परिभाषित कर सकता है। लेकिन जब हम किसी भी विषय या मुद्दे को कानूनी नजरिये से देखते हैं तो हमें समझ में आता है कि लापरवाही कोई ख्याली या अमूर्त चीज नहीं है। इसका ठोस अस्तित्व होता है। कर्तव्यों की अवहेलना के परिणामस्वरूप सामने आई लापरवाही के तमाम पहलू हैं और इसे लेकर कानूनी प्रावधान भी काफी स्पष्ट हैं। लापरवाही से सम्बंधित कानून के अंतर्गत तमाम पेशेवर जैसे चिकित्सक, वकील, वास्तुविद, इंजीनियर एवं अन्य पेशों के जुड़े व्यक्ति आते हैं जिनके पास किसी प्रकार का विशेष कौशल होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन पेशेवरों को अपने कार्य को पूरा करने के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता पड़ती है। किसी चिकित्सकीय दुर्घटना या असफलता की जिम्मेदारी किसी चिकित्सक की हो सकती है और दूसरी तरफ इस बात की भी उतनी ही सम्भावना हो सकती है कि उसकी इसमें कोई जिम्मेदारी बनती ही न हो। ऐसे में हमें इन दोनों की लापरवाही को न केवल अलग–अलग तरह से देखना होगा। बल्कि उसका वर्गीकरण एवं विश्लेषण करना भी आवश्यक होगा।

यदि सरल शब्दों में कहें तो चिकित्सकीय लापरवाही का अर्थ किसी सक्षम चिकित्सकीय व्यक्ति द्वारा तयशुदा मापदंडों के अनुरूप कार्य न कर पाना है। यह भी संभव है कि अपने कौशल का ठीक से उपयोग

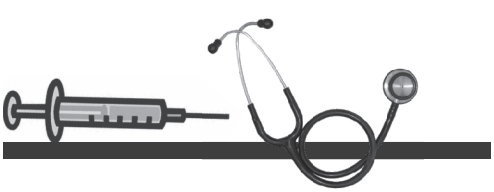

न करने की वजह से उसके मरीज को शारीरिक, मानसिक या वितीय अक्षमता झेलनी पड़ी हो। यदि इसे परिभाषित करने का प्रयास करें तो हम कह सकते हैं कि चिकित्सकीय लापरवाही का अर्थ है किसी मरीज को चिकित्सक द्वारा दी जा रही सेवाओं में अपने कौशल का ठीक से प्रयोग न कर पाना या जानबूझकर लापरवाही बरतना। यह लापरवाही मरीज के मर्ज की पूर्व जानकारी (हिस्ट्री) लेने, उसकी पड़ताल करने, निदान (डायग्नोसिस) करने, पैथोलोजी एवं अन्य जाँच पड़ताल में या मेडिकल अथवा शल्य चिकित्सा के माध्यम से होने वाले उपचार या किसी अन्य प्रक्रिया के दौरान घटित हुई हो सकती है। जाहिर है कि इस लापरवाही के परिणामस्वरूप मरीज को शारीरिक, मानसिक या वित्तीय में से कोई एक या एक साथ तीनों हानियाँ पहुँच सकती हैं।

किस प्रकार की चिकित्सकीय लापरवाही के खिलाफ कार्यवाही संभव है?

"अभियोज्य" लापरवाही से तात्पर्य है ऐसी लापरवाही जिसकी जिम्मेदारी "कर्ता" यानी हमारे मामले में "चिकित्सक" पर डाली जा सकती है।

1. चिकित्सक का मरीज की सेवा के प्रति कर्तव्य है

जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह अपने मरीज की ठीक से जिम्मेदारी के साथ देखभाल करे। उसकी लापरवाही को सिद्ध करने के लिए सर्वप्रथम हमें यह स्थापित करना होगा कि उसने अपना कर्तव्य ठीक से नहीं निभाया, जिसकी वजह से मरीज को या तो चोट पहुँची है या उसे किसी अन्य प्रकार का नुकसान पहुंचा है। गौरतलब है मरीज व चिकित्सक के बीच में एक सम्बन्ध स्थापित होता है जिसकी शुरुआत मरीज से शुल्क (फीस) लेकर हो सकती है। लेकिन किसी आकस्मिकता (इमरजेंसी) की स्थिति में यह सम्बन्ध उसी क्षण बन जाता है जबकि चिकित्सक उसका (मरीज) उपचार करने के उद्देश्य से उसकी ओर पहल करता है।

2. किसी चिकित्सक द्वारा अपने कर्तव्यों की अवहेलना की गई हो,

लापरवाही सिद्ध करने के लिए यह भी आवश्यक है कि शिकायतकर्ता यह सिद्ध करे कि चिकित्सक की ओर से अपने कर्तव्य की अवहेलना या अनदेखी की गई है। यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि कर्तव्य की अवहेलना के परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता (या मरीज) को कुछ न कुछ हानि अवश्य हुई है।

3. लापरवाही के परिणामस्वरूप पहुँची हानि,

लापरवाही के खिलाफ कार्यवाही की सफलता के लिए आवश्यक है कि अपीलकर्ता (मरीज) केवल यही सिद्ध न करे कि चिकित्सक लापरवाह था बल्कि उसे यह भी सिद्ध करना होगा कि उसकी इस लापरवाही की वजह से उसे वास्तव में नुकसान पहुँचा है। साथ ही उसे यह भी बताना होगा कि उसे मिलने वाली क्षतिपूर्ति का कारण यह है कि वह इलाज के दौरान पहुंची चोट की वजह से संभवतः पूर्व की स्थिति में शायद ही पहुँच पाए। यदि कानूनी भाषा में इसे समझें तो नुकसान को लेकर की गई कार्यवाही को लेकर शिकायत निवारण के अंतर्गत मुआवजे के सिद्धान्त के अनुसार प्राप्त मुआवजा उतनी ही रकम का होगा

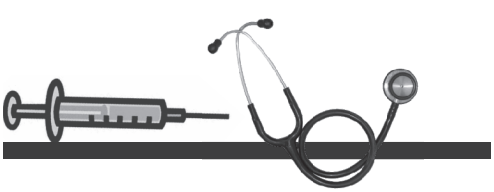

जितनी हानि शिकायतकर्ता को भुगतनी पड़ी है। गौरतलब है इसमें आमदनी, जीवन की प्रत्याशा जैसी तमाम चीजें शामिल की जाती हैं।

अभी तक हम चिकित्सकों द्वारा बरती गई लापरवाहियों के कारण व उनकी पहचान पर एकाग्र रहे हैं। परन्तु यह भी जानना आवश्यक है कि चिकित्सक की लापरवाही की वजह से किस–किस प्रकार की हानि या नुकसान पहुँच सकते हैं और हम उनका किस तरह से वर्गीकरण कर सकते हैं। देखा जाए तो किसी चिकित्सकीय लापरवाही की वजह से दो प्रकार के नुकसान या हानियाँ मरीजों को भुगतनी पड़ती हैं –

1. गैर–आर्थिक या शारीरिक हानि
2. आर्थिक हानि

गैर आर्थिक या शारीरिक हानि–

किसी भी चिकित्सकीय लापरवाही का सर्वाधिक असर मरीज के शरीर पर होता है। इसके परिणामस्वरूप कई बार अनेक अंग जैसे आँख, हाथ या पैर आदि काम करना बंद कर देते हैं।

इन्हें निम्न तरह विभाजित किया जा सकता है,

1. दर्द और पीड़ा
2. जीवन (आयु) का कम होना
3. जीवन की मनोहरता (रमणीयता) की हानि – इसे संक्षेप में कुछ इस तरह व्याख्यायित किया जा सकता है कि जीवन में मनोहरता की हानि का अर्थ है, '' जीवन के आनंद की हानि।'' इसमें सभी प्रकार की हानियां जैसे घूमने–फिरने की स्वतंत्रता, विवाह की संभावनाओं का नष्ट होना, आंख की ज्योति का जाना और इतना ही नहीं अपनी आदतों (हाबीज/शौक) को पूरा न कर पाने से पहुंचने वाला दुख भी शामिल है यानि इसमें शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के नुकसान शामिल हैं और दोनों को एक–दूसरे से अलग कर पाना पूरी तरह से संभव नहीं है।

आर्थिक हानि–

1. आमदनी की हानि
2. भविष्य के खर्चे – लापरवाही के फलस्वरूप पहुँची हानि के कारण मरीज को कार्य करने या भविष्य में अतिरिक्त उपचार की आवश्यकता का हिसाब–किताब लगा पाना काफी कठिन है और इसकी गणना के लिए कई प्रकार से विभिन्न घटकों का आंकलन करना होगा। इसमें भविष्य में उपचार व अतिरिक्त देखभाल (नर्सिंग) की आवश्यकता भी पड़ सकती है तथा चिकित्सा के लिए कुछ विशिष्ट–पोषण आहार आदि की व्यवस्था भी मरीज को करनी पड़ सकती है।

एक बात स्पष्ट रूप से उभर कर आ रही है कि अधिकांशतः मरीज को ही सिद्ध करना होता है कि चिकित्सक द्वारा लापरवाही बरती गई है। यह शर्त अपने आप में बहुत विचित्र परिस्थितियों को जन्म देती है। समाज में जिस प्रकार नैतिकता का हनन हो रहा है, उसके बाद किसी भी मरीज के लिए यह सिद्ध करना कमोवेश असंभव सा हो जाता है कि उनको पहुंची हानि का कारण चिकित्सकीय लापरवाही है। परन्तु कानून कभी भी एकतरफा नहीं होता। कई मामलों में बचावकर्ता या चिकित्सक पर भी यह जिम्मेदारी आ जाती है कि वह सिद्ध करे कि उसने लापरवाही नहीं की है।

इसके लिए एक लेटिन शब्द है न "ES IPSA Loguitan" यानि हालात अपनी कहानी (बात) स्वयं बयां कर रहे हैं। कुछ मामलों में जहां प्राथमिक तौर पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चोट का कारण लापरवाही है तो वहां स्वमेव यह सिद्धांत लागू हो जाता है। इसमें अपीलकर्ता को महज यह सिद्ध करना होता है कि यह एक दुर्घटना है और इसकी प्रकृति उसे मालूम नहीं है। इसमें सारी जिम्मेदारी चिकित्सक पर आ जाती है कि वह स्वयं को निर्दोष साबित करे।

चिकित्सा के दौरान ऐसी अनेक प्रक्रियाएं होती हैं, जिनके लिए यदि लिखित सहमति (Consent) नहीं ली जाती है तो ऐसी गतिविधि चिकित्सकीय लापरवाही की श्रेणी में आएगी। ये हैं :

1. सभी बड़ी या महत्वपूर्ण जांच–निदान (डायनोस्टिक) प्रक्रियाएं
2. जनरल एनेस्थीसिया (बेहोश करना)
3. शल्यक्रिया (सर्जिकल आपरेशन)
4. आंतरिक (अंतरंग) परीक्षण
5. आयु, पुरुषत्व एवं कौमार्य के निर्धारण हेतु परीक्षण
6. सभी प्रकार के मेडिको–लीगल मामले

अभी तक हमने चिकित्सीय लापरवाही के सैद्धांतिक पक्ष को देखा है। यदि हम अपने आसपास नजर दौड़ाएं तो हमें तमाम ऐसे उदाहरण मिल जाएंगे जो कि लापरवाही के प्रतीक हैं। लेकिन हम कई बार इनकी अनदेखी कर देते हैं। आइए ऐसे कुछ उदाहरणों पर निगाह डालते हैं जो कमोवेश चिकित्सीय लापरवाही की श्रेणी में आते हैं। ये हैं :

1 एनेस्थीसिया की प्राणघातक खुराक दे देना या इसे गलत बीमारी में देना।

2 किसी गलत अंग का विच्छेदन कर देना और गलत अंग का आपरेशन कर देना, गलत अंग निकाल देना या कोई गलत नस (नलिका) को बांध देना।

3 गलत (दूसरे) मरीज का आपरेशन।

4 आपरेशन के दौरान शरीर के किसी अंग में कोई औजार या स्पंज छोड़ देना।

5 खून बहना बंद करने के (टांके आदि) को जरुरत से ज्यादा अंदर तक लंबा छोड़ देना। जिसकी वजह से गेंगरीन हुआ हो।

6 गलत खून चढ़ाना।

7 बहुत अधिक कसकर प्लास्टिक या खपच्चियां बांधना जिसके परिणामस्वरूप गेंगरीन या पक्षाघात (पेरालिसिस) हो जाए।

8 आपराधिक गर्भपात करना।

इसके अलावा कुछ सामान्य चूक होती हैं जिन्हें हम चिकित्सीय लापरवाही कह सकते हैं। ये हैं

1 जरुरत से ज्यादा और लापरवाही के बिना संभव विपरीत प्रभाव (साइड इफेक्ट) का आंकलन करें । दवाइयां लिखना।

2 भूलवश गलत दवाई दे देना।

3 असावधानीवश टीकाकरण हेतु गलत दवाई की आपूर्ति कर देना।

उपरोक्त उदाहरण अक्सर हमारे सामने या सुनने में आते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि अपना या अपने किसी परिचित का इलाज करवाने के दौरान अपने आँख व कान खुले रखें और पूरी सावधानी से उपचार करवाएं।

dgk&dgk vihy dh tk ldrh g

भारत में चिकित्सकीय लापरवाही के खिलाफ अनेक स्तरों पर अपील कर न्याय पाने के लिए दस्तक दी जा सकती है। इस विविधता भरे न्याय के अधिकार क्षेत्र को समझने के लिए विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है। न्याय पाने के लिए निम्न संस्थान उपलब्ध हैं।

1. सर्वोच्च न्यायालय
2. राज्यों के उच्च न्यायालय
3. राष्ट्रीय आयोग
   - अ. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
   - आ. राष्ट्रीय महिला आयोग
   - इ. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग
4. राज्य आयोग – उपरोक्त आयोगों की राज्य में स्थित शाखाएं या राज्यों द्वारा स्थापित आयोग
5. उपभोक्ता फोरम
   - अ. राष्ट्रीय
   - आ. राज्य स्तरीय
   - इ. जिला स्तरीय
6. दीवानी न्यायालय
7. आपराधिक न्यायालय
8. चिकित्सा परिषद (मेडिकल काउन्सिल)
   - अ. राष्ट्रीय चिकित्सा परिषद (Medical Council of Indi)
   - आ. राज्य चिकित्सा परिषद
9. लोक अदालतें

उपरोक्त सूची की विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में प्रत्येक स्तर पर शिकायत निवारण की प्रक्रिया मौजूद है और किसी स्तर पर निर्णय से संतुष्ट न होने की स्थिति में ऊपरी स्तर पर अपील की पूरी व्यवस्था भी मौजूद है।

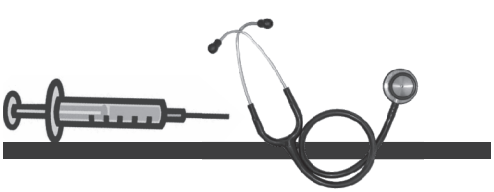

चिकित्सकीय लापरवाही की प्रवृति

सामान्य विभाजन के आधार पर हम चिकित्सकीय लापरवाही को दो श्रेणियों में बांट सकते हैं। यह निर्धारण मूलतः लापरवाही के कारण सामने आई जवाबदेही पर निर्भर करता है। यह विभाजन है।

(१) दीवानी (सिविल) चिकित्सकीय लापरवाही

(२) आपराधिक (क्रिमिनल) चिकित्सकीय लापरवाही

दीवानी (सिविल) चिकित्सकीय लापरवाही

ऐसी लापरवाही जिसमें दीवानी अधिकारों का उल्लंघन हुआ हो, वह इस श्रेणी में आते हैं। अनेक मामलों में इनकी पृष्ठभूमि में दो पक्षों के बीच हुए समझौते (कांट्रेक्ट) होते हैं। ऐसे मामलों में निपटारा मुआवजे या निषेधादेश (Injuction) के द्वारा होता है।

आपराधिक (क्रिमिनल) चिकित्सकीय लापरवाही

आपराधिक (क्रिमिनल) चिकित्सकीय लापरवाही दीवानी लापरवाही की बनिस्पत ज्यादा गंभीर होती हैं। इसकी गंभीरता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है यह मुआवजे के माध्यम से दूर नहीं की जा सकती। इस श्रेणी में अपील दायर करने के लिए यह सिद्ध करना होगा कि मात्र किया गया कृत्य अकेला अपराध नहीं हैं, बल्कि यह भी बताना होगा कि इसके पीछे अपराधी दिमाग भी काम कर रहा था।

यहाँ पर अधिक विस्तार न जाते हुए इतनी जानकारी देना उचित होगा कि आपराधिक चिकित्सकीय लापरवाही सिद्ध होने पर किसी चिकित्सक/प्रतिवादी को कारावास या अर्थदंड अथवा दोनों हो सकते हैं।

चिकित्सकीय लापरवाही से सम्बंधित विभिन्न पक्षों की संक्षिप्त विवेचना के बाद सवाल उठता है कि किन कानूनों के तहत हम न्यायालय आयोगों में अपनी बात रख सकते हैं और मुआवजे या सजा की मांग कर सकते हैं। स्वास्थ्य एक व्यापक क्षेत्र है और इसमें बहुत अधिक संख्या में कानून लागू होते हैं। इस पुस्तिका के आरंभ में हम स्वास्थ्य को लेकर संवैधानिक प्रावधानों की चर्चा कर ही चुके हैं। इस अध्याय में हम उन कानूनों की सूची दे रहे हैं, जिनके अंतर्गत चिकित्सकीय लापरवाही को लेकर अपील की जा सकती हैं। इनमें से कुछ पर हम इस पुस्तिका के दूसरे खंड में संक्षेप में चर्चा भी करेंगे।

1) भारतीय दंड संहिता–1860
2) सांघातिक दुर्घटना अधिनियम–1855
3) भारतीय मेडिकल डिग्री अधिनियम–1916
4) खतरनाक औषधि अधिनियम–1930
5) ड्रग एंड कास्मेटिक अधिनियम–1940
6) डेंटिस्ट (दन्त चिकित्सा) अधिनियम–1948
7) औषधि (नियंत्रण) अधिनियम–1948 और 1950

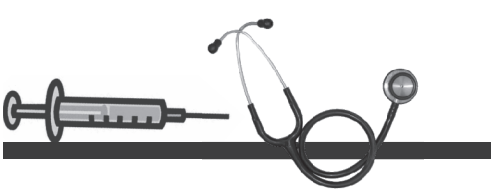

8) फॉर्मेसी अधिनियम एवं फॉर्मेसी काउंसिल आफ इंडिया रेग्यूलेशन (नियम)–1952

9) भारतीय चिकित्सा परिषद नियम–1957

10) खाद्य मिलावट (Adultenation) अधिनियम–1952

11) ड्रग्स एंड मेडिकल रेमेडीज (आब्जेक्शनेबल एडवरटाइजमेंट) अधिनियम–1954

12) मेडिकल टर्मिनेशन आफ प्रेग्नेंसी अधिनियम–1975

13) दि डेंटिस्ट कोड ऑफ एथिक्स एंड रेग्युलेशन–1976

14) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम–1986 (कन्जूमर प्रोटेक्शन एक्ट–1986)

15) मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनियम–1994

16) जन्म–मृत्यु एवं विवाह पंजीकरण अधिनियम–1886

17) महामारी (बीमारी) अधिनियम–1897

18) कर्मचारी मुआवजा अधिनियम–1923

19) भारतीय नर्सिंग काउंसिल अधिनियम–1947

20) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम–1948

21) गर्भधारण पूर्व और प्रसूति पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम 1994 (Pre & Conception and Pre-Natal Diagnostic Rechnigues (Prohibition of selection Act A 1995) इसे संक्षेप में पीसीपीएनडीटी एक्ट भी कहा जाता है।

22) अशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों की रक्षा एवं पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995

Persons with disabilities (Equal Oppertunities of Right and full Participation) Act –1995

23) महिलाओं की घरेलू हिंसा से सुरक्षा अधिनियम, 2005

24) Disaster Management Act - 2005

25) बच्चों के अधिकारों का संरक्षण आयोग अधिनियम –2005, (Commissions for Protection of child Right Act - 2005)

26) खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम, 2006 (The Food Safety and standard Act - 2006

27) प्रसूति लाभ अधिनियम–1961

28) भारतीय संविदा अधिनियम–1872

29) भारतीय दंड संहिता–1973 (Code of Criminal Procedure – 1973)

उपरोक्त सूची से स्पष्ट होता है कि किसी भी प्रकार की लापरवाही से बच पाना कमोवेश असंभव है। इसके अलावा किसी विशिष्ट स्वास्थ्य समस्याएं, लापरवाही को लेकर व किन्ही अन्य कानूनों को भी शामिल किया जा सकता है, आवश्यकता इस बात की है कि ठंडे दिमाग से यह तय किया जाए कि

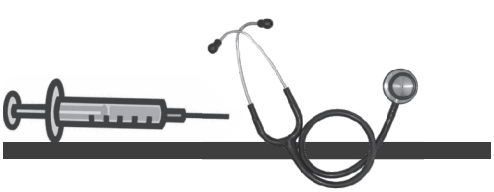

लापरवाही किस प्रकार की है और उसका प्रतिकार हमें किस कानून के अंतर्गत लेना है। कोई भी पीड़ित व्यक्ति संबंधित चिकित्सक की शैक्षणिक योग्यता से लेकर उसके उपचार में हुई लापरवाही का ठीक से प्रतिकार कर न्याय प्राप्त कर सकता है। इस बात की भी आवश्यकता है कि अधिवक्ता समुदाय भी संबंधित कानूनों का गहन अध्ययन करें। कानूनी पक्ष संभालने वाले वर्ग को न केवल कानूनी पक्ष वरन् चिकित्सकीय पक्ष की भी सामान्य जानकारी होना आवश्यक है। साथ ही साथ मीडिया के क्षेत्र में कार्य करने वालों को भी इस विषय की बारीकियों को समझने में थोड़ा समय व ध्यान देना आवश्यक है।

इस पुस्तिका के प्रथम भाग में हमने भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया को तथा वर्तमान में इस क्षेत्र के सामने आ रही समस्याओं, जिसमें विशेषतः मरीजों के सम्मुख मुंह बाए खड़े शोषण के बारे में विमर्श किया। हम यह देखते हैं कि भारत में क्रमिक विकास के दौर में अलग–अलग प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों और प्रणालियों का सहारा लिया है। परंतु 18वीं शताब्दी के अंत में जबसे भारत में पश्चिमी या एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली ने अपनी जड़ें जमानी शुरु की, तब से भारतीय चिकित्सा जगत में आमूलचूल वैचारिक परिवर्तन आया। 20वीं शताब्दी की पहली अर्ध–शताब्दी में हालांकि चिकित्सा सेवा क्षेत्र काफी सीमित था लेकिन इसमें शोषण की प्रवृत्ति की गुंजाइश भी काफी कम थी। साठ के दशक से सार्वजनिक के बजाए निजी क्षेत्र की भागीदारी में वृद्धि होती गई। इसकी शुरुआत धीमी थी लेकिन नब्बे के दशक में नवउदारवाद के प्रवेश के साथ स्वास्थ्य के निजीकरण को नया आत्मविश्वास मिला और भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति दिनों दिन बद से बदतर होती गई। चिकित्सा शिक्षा के निजीकरण ने भारतीय स्वास्थ्य जगत की पूरी मानसिकता ही बदल दी और अब चिकित्सा क्षेत्र सेवा की बजाए पूर्ण व्यवसाय में परिवर्तन हो गया। लाभकामना अधिकांश स्वास्थ्य संस्थानों और कर्मियों की पहली प्राथमिकता हो गई। भारतीय चिकित्सा परिषद (इंडियन मेडिकल काउंसिल) की अक्षमता ने इस पूरे क्षेत्र को कमोवेश पूर्ण स्वच्छंदता ही प्रदान कर दी। अंततः सर्वोच्च न्यायालय को इसके निर्णयों की जांच हेतु न्यायमूर्ति (से.नि.) लोढ़ा की अध्यक्षता में एक समिति का गठन करना पड़ा, जो कि अब परिषद के सभी निर्णयों की समयबद्ध समीक्षा करेगी। इससे समस्या की विशालता का अंदाजा लगाया जा सकता है। जिस क्षेत्र की सर्वोच्च नियामक संस्था ही अपनी विश्वसनीयता खो चुकी हो, उसका तो फिर भगवान ही मालिक है, परंतु यही वास्तविकता है।

दूसरी ओर भारतीय न्याय व्यवस्था ने जबसे सांस्थानिक स्वरूप ग्रहण किया, कमोवेश तभी से इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य के क्षेत्र में होनी वाली लापरवाहियों आदि से निपटने के प्रावधान किए थे। इन प्रावधानों को हम निम्न दो हिस्सों में बांट सकते हैं।

1. संवैधानिक प्रावधान
2. कानूनी प्रावधान

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में सीधे–सीधे स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में नहीं रखा गया

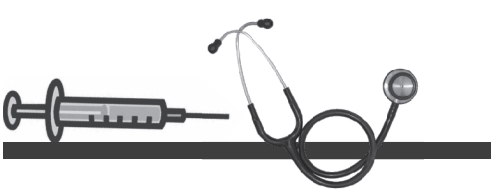

है। पिछले वर्षों में शिक्षा को मूल अधिकार का हिस्सा बनाने के बाद स्वास्थ्य को भी मूल अधिकारों में शामिल करने की मांग लगातार उठ रही है। परंतु सरकारें इसे मूर्त रूप प्रदान करने में स्वयं को सक्षम नहीं पा रही हैं। वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसकी और बढ़ने की बजाए, स्वास्थ्य पर टुकड़ों–टुकड़ों में प्रयास करती नजर आती हैं। जैसे स्वास्थ्य बीमा, टीकाकरण, पोलियो निवारण, टीबी और कुष्ठ रोग निवारण या एच आई वी एड्स निवारण के कार्यक्रम या मिशन संचालित करना। राज्य की स्वास्थ्य सेवाओं के अलावा राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन या राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के माध्यम से कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार ''सबके लिए स्वास्थ्य'' की दिशा में कार्य कर रही है। परंतु वस्तुस्थिति इसके काफी विपरीत है। भारत की 80 प्रतिशत आबादी आज दवाइयों व इलाज का खर्च अपनी जेब से कर रही है, यानी उन्हें सरकारी स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध नहीं होती हैं। आर्थिक और सामाजिक वंचितपन की स्थिति के मद्देनजर भारत के 80 प्रतिशत लोगों को सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की जरूरत है। देश में स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले कुल खर्चे (सरकारी और निजी मिलकर) का 20 प्रतिशत सरकारी सेवाओं पर और 80 प्रतिशत निजी सेवाओं पर खर्च होता है। यानी लोगों पर इसका आर्थिक भार बहुत ज्यादा है और सरकार कहीं तत्पर नहीं दिखाई देती।

भारतीय संविधान अपनी प्रस्तावना में ही ''सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय'' एवं ''प्रतिष्ठा और अवसर की समानता की बात करता है। यदि स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता को जांचें तो साफ नजर आता है कि साधारण या गरीब जनता को न तो ''न्याय'' मिल पा रहा है और न ही उसे उपचार बराबरी के अवसर प्राप्त हैं।

संविधान का अनुच्छेद–14 स्पष्ट उल्लेख करता है कि ''राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। इसी तरह संविधान का अनुच्छेद–21 स्पष्ट उल्लेख करता है कि किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। यानी यह हमारा जीवन का अधिकार है। परंतु व्यवस्थित उपचार की व्यवस्था के अधिकार को हम क्या कह सकते हैं? सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन के अधिकार को विस्तारित करते हुए अनुच्छेद–21 को नए तरह से परिभाषित करने का प्रयास भी किया है। सन् 1987 में सर्वोच्च न्यायालय ने विन्सेंट पणीकर विरुद्ध भारत सरकार के मामले में निर्णय दिया था कि ''एक स्वस्थ शरीर सभी मानवीय गतिविधियों का आधार है। अतएव एक कल्याणकारी राज्य में बेहतर स्वास्थ्य हेतु सुस्थिर परिस्थितियों का निर्माण किया जाना चाहिए अर्थात स्वास्थ्य का अधिकार।'' एक अन्य मामले, पंजाब राज्य विरुद्ध रामलुभाया बागा (1988) में सर्वोच्च न्यायालय ने स्वास्थ्य सेवा को संवैधानिक अधिकार के नजरिए से संविधान के अनुच्छेद–21, 41 एवं 47 के परिप्रेक्ष्य में कहा था कि ''अनुच्छेद–21 के अन्तर्गत नागरिक के अधिकारों की रक्षा करना राज्य के लिए अनिवार्य है। इस बात को अनुच्छेद–47 और अधिक दृढ़ता प्रदान करता है। अपने नागरिकों के स्वास्थ्य का ध्यान रखना राज्य का प्राथमिक कर्तव्य है। इस बात में कोई शक नहीं है कि सरकार सरकारी अस्पताल एवं स्वास्थ्य केन्द्र खोलकर अपने इस कर्तव्य का पालन कर रही है। परंतु इसके अर्थपूर्ण होने के लिए आवश्यक है कि इस तक सबकी पहुंच हो और उनके पास यथोचित स्वास्थ्य

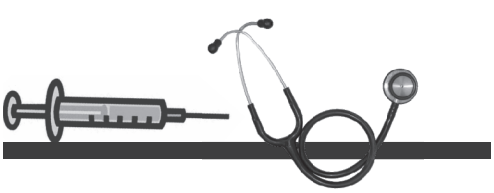

सुविधाएं एवं यथोचित धन भी उपलब्ध हो। सर्वोच्च न्यायालय ने 4–5–2016 को म.प्र. सिलिकोसिस पीड़ित संघ, खेडूत किसान मजदूर संगठन द्वारा गुजरात के कारखानों में कार्य करने से सिलिकोसिस बीमारी से प्रभावित लोगों के मामले में एक जनहित याचिका में अंतरिम निर्णय देते हुए साफ कहा है कि ''इस बात को संज्ञान में लेना आवश्यक है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन को व्यापक अर्थ प्रदान किया है, इसके अन्तर्गत उसने अवलोकित किया है कि मनुष्य को गरिमामय जीवन का अधिकार है, जो कि सभी प्रकार के शोषण से मुक्त हो तथा ऐसे वातावरण में हो जो कि उसके स्वास्थ्य एवं कल्याण में सहायक हो"। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्वीकार किया है कि अनुच्छेद–21 के अन्तर्गत एक कर्मचारी का स्वास्थ्य का अधिकार, उसके स्वास्थ्य की रक्षा हेतु चिकित्सा सहायता एवं कर्मचारी के उत्साह का बना रहना उसका मूल अधिकार है, जिससे कि कर्मचारी का जीवन एक मनुष्य की गरिमा के साथ अर्थपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण बना रह सके।

उपरोक्त निर्णय इस लिहाज से भी महत्वपूर्ण है कि पहली बार असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को क्षतिपूर्ति का आदेश प्राप्त हुआ है। यह आदेश न सिर्फ स्वास्थ्य की बात करता है वरन् कार्यस्थल पर विद्यमान परिस्थितियों और मनुष्य की गरिमा को भी बहुत महत्व प्रदान करता है। साथ ही यह आदेश भारत में सरकारों व उद्योगपतियों की साठगांठ से मजदूरों के स्वास्थ्य के साथ हो रहे खिलवाड़ को भी रेखांकित करता है।

जैसा कि भारतीय संविधान की भूमिका से स्पष्ट हो जाता है कि हम महज राजनैतिक लोकतंत्र के लिए ही प्रतिबद्ध नहीं हैं बल्कि सामाजिक व आर्थिक समानता और लोकतंत्र के लिए भी प्रतिबद्ध हैं। अनुच्छेद–42 के अनुसार राज्य काम की न्यायसंगत एवं मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा। अनुच्छेद–47 साफ कहता है कि ''राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के विशिष्टतया अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवनस्तर को ऊंचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को ऊंचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और विशिष्टतया मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकर औषधियों के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा। परंतु नीति निर्देशक तत्वों के बाध्यकारी न होने के कारण सरकारें लगातार स्वास्थ्य को मौलिक अधिकारों की सूची में शामिल करने से बच रही हैं। परंतु नीति निदेशक तत्वों और सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न आदेशों को केंद्र में रखकर आगे की संघर्ष की बुनियाद रखी जा सकती है।

उपरोक्त उदाहरणों के अलावा अन्य कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने स्वास्थ्य संबंधी दिशानिर्देश केंद्र एवं विभिन्न राज्यों की सरकारों को दिए हैं। परंतु आम सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति हम सबके सामने है। उस पर विस्तार से चर्चा करना इस पुस्तिका का विषय नहीं है, लेकिन इतना उल्लेख तो किया जा सकता है कि भारत की विधायिका और कार्यपालिका ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वास्थ्य को लेकर जो निर्णय संवैधानिक मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में दिए हैं, उनका भी ठीक तरह से क्रियान्वयन नहीं किया गया है। क्यों, कैसे और किसलिए यह अपने आप में एक पृथक ग्रंथ का विषय है।

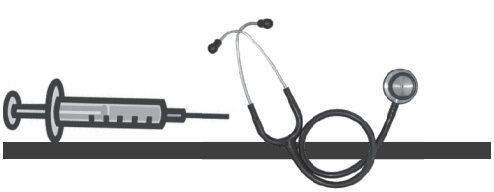

अंत में इस बात पर भी गौर करना आवश्यक है कि संवैधानिक प्रावधानों के तहत स्वास्थ्य संबंधी अनियमितताओं के खिलाफ किस प्रकार से न्यायालयों में जाया जा सकता हैं ? सबसे पहले बात सर्वोच्च न्यायालय की।

संविधानिक उपचारों (Remedie) के अधिकार के अंतर्गत अनुच्छेद 32 (2) में इसे लेकर जनहित याचिका के माध्यम से भी कार्यवाही की जा सकती है। इसके अनुसार, ''इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय ऐसे निर्देश या आदेश या रिट याचिका, जिसके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।''

(The Supreme Court shall have power to issue directions or orders or writs] including writs in the nature of habeas corpus] mandamus] prohibition] quowarran to and certiorari] which ever may be appropriate] for the enforcement of any rights conferred by this post)

इस अनुच्छेद के अंतर्गत 32 (4) में कहा गया है, ''इसे संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवा, इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलंबित नहीं किया जाएगा।

(The right guaranteed by this article shall not be suspended eÛcept as otherwise provided by this constitution)

यदि राज्यों के उच्च न्यायालयों की बात करें तो संविधान उन्हें कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय से ज्यादा व्यापक अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है। उच्च न्यायालयों में अनुच्छेद–226 के अंतर्गत वादी को संविधान एवं कानून द्वारा दिए प्रदत्त अपने अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में उपचार हेतु पूर्ण अधिकार प्रदान करता है। इसे अनुच्छेद–226 (1) के माध्यम से समझते हैं ''अनुच्छेद–32 में किसी बात के होते हुए भी प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्य क्षेत्रों में सर्वत्र जिनके संबंध में वह अधिकारिता का प्रयोग करता है, भाग–3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित करने–कराने के लिए और किसी अन्य प्रयोजन के लिए उन राज्य क्षेत्रों के भीतर किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को या समुचित मामलों में किसी सरकार को ऐसे निर्देश, आदेश या रिट जिनके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं या उनमें से कोई निकालने की शक्ति होगी।''

(Not with standing anything in article – 32] every High Court have power] throughout the territories in relation to which it exercise jurisdiction to issue to any person or authority] including in appropriate cases] any government within those territories directions] orders or writs] including writs in the nature of habeas corpus] mandamus] prohibition] quo warranto and certiorari] or any of them] for the enforcement of any of rights conferred by peart III and for any other purpose)

इस प्रकार से हम एक ऐसे संविधान के तहत स्वयं को पाते हैं, जो कि हमारे जीवन के अधिकार को पूरी गरिमा के साथ व्यतीत किए जाने की आजादी प्रदान करता है। आवश्यकता संविधान को पढ़ने, समझने, अपनाने और इसे वास्तविक रूप से धरातल पर क्रियान्वित करने की है।

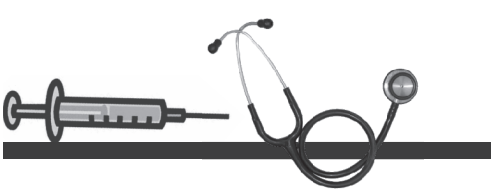

1. कानूनी प्रावधान

पिछले खंड में हमने मोटे तौर पर कुल 29 (उन्तीस) कानूनों का उल्लेख किया है। जिनके अन्तर्गत किसी पीड़ित व्यक्ति को उपचार (कानूनी मदद) मिल सकता है। चूंकि स्वास्थ्य विज्ञान एक जटिल एवं अति–विशेषज्ञता वाला विषय है, अतएव इसके अंतर्गत कार्यवाही करने हेतु अत्यंत कुशलता, सजगता और विशेषज्ञता की आवश्यकता है। एक समस्या यह भी है कि इसमें किसी नतीजे पर यानी जानबूझकर की गई आपराधिक लापरवाही या सामान्य चूक के बीच अंतर कर पाना बेहद कठिन है। उपचार एवं निदान के बीच कई बार विरोधाभास भी सामने आता है। इसके बाद किसी व्यक्ति के उपचार में चिकित्सक का विवेक भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। एक सामान्य व्यक्ति की निगाह में जो स्थिति–परिस्थिति चूक या लापरवाही की श्रेणी में आती है, वही स्थिति–परिस्थिति चिकित्सकीय व्यवसाय के परिप्रेक्ष्य में गलत साबित हो सकती है। अतएव हमें अत्यंत सूक्ष्मता से सभी सन्दर्भों एवं कारकों को ध्यान में रखना होगा और विशेषज्ञों अर्थात स्वास्थ्य एवं कानूनी दोनों क्षेत्रों में सामंजस्य बैठाते हुए अपने कार्य को अंजाम तक पहुंचाना होगा।

इस भाग में हम कुछ कानूनों एवं कानूनी प्रावधानों का उल्लेख कर रहे हैं, लेकिन यह विवेचना अत्यंत प्राथमिक स्तर की है और इनके विस्तार में जाने की आवश्यकता है। यह प्रत्येक मामले–विशेष पर निर्भर करेगा कि किस कानून के अन्तर्गत हम कानूनी उपचार (Remedy) की अपेक्षा करते हैं।

भारतीय दंड संहिता, 1860
(Indian Penal Code - 1860) (IPC)

भारतीय दंड संहिता में यूं तो चिकित्सकीय लापरवाही को किसी विशिष्ट अपराध की तरह उल्लखित नहीं किया है। परंतु इसके गहन निरीक्षण करने से एवं अनेक मुकदमों में हुए निर्णयों पर गौर करने से यह बात समझ में आती है कि इसके अन्तर्गत तमाम तरह की स्वास्थ्य सेवा सम्बन्धी लापरवाहियों के विरुद्ध कानूनी प्रावधान हैं और पीड़ित व्यक्ति को कानूनी उपचार प्राप्त हो सकता है। इन प्रावधानों पर निगाह डालते हैं।

भारतीय दंड संहिता–1860 के अध्याय 14 एवं 16 के अन्तर्गत चिकित्सकीय लापरवाही संबंधी कुछ प्रावधान सामने आते हैं। अध्याय 14 में सार्वजनिक स्वास्थ्य, सुरक्षा, सुविधा, शालीनता व नैतिकता से संबंधित अपराधों के उपचार पाने हेतु धारा 269, 270, 274, 275, 276 एवं 284 का प्रावधान है। इनके अन्तर्गत चिकित्सकीय लापरवाही को भी सम्मिलित किया गया है।

यदि पाया जाता है कि किसी चिकित्सक की लापरवाही से कोई ऐसी बीमारी फैल सकती है जिससे कि जीवन को खतरा पैदा हो सकता है तो उसे दंडित किया जा सकता है। यह आईपीसी की धारा 270 के अंतर्गत दंडनीय है और इसके अंतर्गत 2 वर्ष तक की सजा या जुर्माना या दोनों हो सकते हैं। यह बात सभी पैथियों जैसे आयुर्वेद, सिद्ध, होम्योपैथी, यूनानी व एलौपैथी सभी पर समान रूप से लागू होती है।

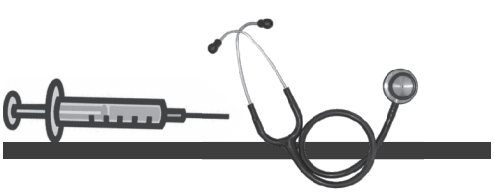

इसी तरह नकली दवाइयां बेचने वालों को धारा–274 के अंतर्गत 6 माह की सजा व जुर्माना हो सकता है।

इसी तरह यदि कोई चिकित्सक लापरवाही या अविवेकपूर्ण तरीके से किसी मरीज को नुकसान पहुंचाता है, जिसमें कि कोई जहरीला तत्व शामिल हो तो उसे धारा–284 के अंतर्गत दंडित किया जा सकता है।

इसी तरह यदि किसी उपकरण के लापरवाही या अविवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग की बात सिद्ध होती तो उसे धारा–287 के अंतर्गत दंडित किया जा सकता है।

इसी तरह आईपीसी–1860 के अध्याय–16 के अंतर्गत धारा– 304 ए में कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण प्रावधान हैं। इसमें प्रावधान है कि यदि लापरवाही के किसी कृत्य जिसमें चिकित्सक, चिकित्सा सहायक, नर्स सभी शामिल हैं, सिद्ध हो जाता है तो उन्हें दो वर्ष तक की सजा व जुर्माने से दंडित किया जा सकता है।

इसके अलावा कोई पंजीकृत चिकित्सक यदि लापरवाहीपूर्वक किसी महिला का गर्भपात करता है तो आईपीसी की धारा 213, 313, 314 व 315 के अंतर्गत संबंधित पक्ष को दंडित किए जाने के प्रावधान हैं।

इसी तरह उपचार के दौरान लापरवाही बरतने से यदि मरीज को गंभीर चोट पहुंची है या उसका अंग–भंग हुआ है तो उसे धारा 323 एवं 325 के अंतर्गत दोषी ठहराया जा सकता है। इस तरह के मामलों में निम्न प्रकार की चोटों आदि को ''गंभीर'' या अत्यंत कष्टदायक की संज्ञा दी गई है –

1. नपुंसकता,
2. किसी की आँख की रोशनी में स्थायी तौर पर रुकावट या कष्ट होना,
3. किसी की कान में सुनाई देने में स्थायी तौर पर रुकावट या कष्ट होना,
4. किसी भी जोड़ / या उसके हिस्से (अंश) में स्थायी समस्या / कष्ट होना,
5. किसी भी जोड़ या उसके हिस्से का नष्ट हो जाना या स्थायी तौर पर उसकी ताकत समाप्त होना,
6. सिर या चेहरे का विकृत हो जाना,
7. हड्डी या दांत का टूटना या अपनी जगह से उखड़ जाना।

उपरोक्त में से किसी में भी दोषी पाए जाने पर चिकित्सक को 7 वर्ष तक की सजा हो सकती है, साथ ही जुर्माना लगाया जा सकता है।

भारतीय दंड संहिता–1973

Indian Penal Code -1973

भारतीय दंड संहिता–1973 में यूं तो सीधे–सीधे दंडात्मक प्रावधान नहीं हैं और इसके अंतर्गत होने वाले अपराधों की सजा भारतीय दंड संहिता–1860 के अंतर्गत ही निर्धारित की जाती है। परंतु यह अत्यंत महत्वपूर्ण कानून है जिसके माध्यम से किसी लापरवाही को आपराधिक करार दिया जा सकता है। इसके अंतर्गत कोई मजिस्ट्रेट (कार्यपालक भी) किसी पुलिस अधिकारी या अन्य स्रोत से यदि यह जानता है कि किसी व्यापार या व्यवसाय (Occupation) के माध्यम से कुछ ऐसा हो रहा है जो कि समुदाय के स्वास्थ्य या शारीरिक सुख–चैन को नुकसान पहुंच रहा है, तो ऐसी असुविधा फैलाने वाले व्यक्ति के खिलाफ

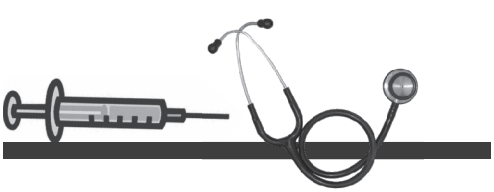

कार्यवाही कर सकता है। इतना ही नहीं उसे उस व्यापार या व्यवसाय को करने से रोका भी जा सकता है। ऐसा अनेक बार होता है जबकि सामान्यतौर पर दीवानी कार्यवाही से किसी निष्कर्ष पर पहुंचना संभव न हो, तो इस कानून का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है।

भारतीय संविदा अधिनियम–1872
Indian Contract Act - 1872

भारतीय संविदा अधिनियम–1872 के अंतर्गत मुख्यतः मरीज या उसके प्रतिनिधि एवं चिकित्सक या अस्पताल के मध्य उपचार हेतु तयशुदा फीस, जो कि मरीज या संबंधित पक्ष द्वारा देय होगी एवं चिकित्सक एवं अस्पताल द्वारा किन–किन शर्तों एवं विधियों के माध्यम से उपचार किया जाएगा, को एक संविदा (Contract) माना गया है। इसमें शुल्क स्वीकार कर लेने के पश्चात चिकित्सक एवं अस्पताल को कौशलपूर्ण सेवा प्रदान करनी होती है। यदि कोई स्वास्थ्यकर्मी ठीक तरह से उपचार या सेवा नहीं करता है तो इसे लापरवाहीपूर्ण कृत्य समझा जाएगा और यह भारतीय संविदा अधिनियम–1872 की धारा 74 का उल्लंघन होगा। यदि ऐसा सिद्ध हो जाता है तो संबंधित पक्ष मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी होगी।

अपकृत्य विधि
The law of Tort

यह एक वैधानिक शब्दावली है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है – व्यक्तिगत या नागरिक अपराध, जिसके लिए वादी न्यायालय से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। यदि चिकित्सकीय लापरवाही के नजरिए से देखें तो इसके मायने हैं कि अपने कर्तव्य के पालन करने में हुई चूक, जो कि एक योग्य चिकित्सक करता है या कुछ ऐसा करना जो कि एक योग्य चिकित्सक को नहीं करना चाहिए। हानि प्राप्त करने के वैधानिक अधिकार (Under the law of Tort) के अंतर्गत कानून के उल्लंघन से निपटने के लिए कानूनी उपचार एवं अतिरिक्त कानूनी उपचार की वर्गीकृत किया हुआ है। इसके अंतर्गत चिकित्सकीय लापरवाही सिद्ध होने पर इसका उपचार (निपटान) क्षतिपूर्ति एवं मुआवजे के रूप में प्राप्त होता है। गौरतलब है ब्रिटेन में इसका बहुतायत में प्रयोग होता है क्योंकि वहां पर लिखित कानूनों की संख्या कम है। भारत में इसका उपयोग उसी दशा में हो सकता है जबकि मांगे गए उपचार (त्मउमकल) हेतु कोई कानून या कानूनी प्रावधान उपलब्ध न हो।

भारतीय चिकित्सा उपाधि अधिनियम–1916
The Indian Medical Degrees Act-1916

यह अधिनियम 16 मार्च 1916 को लागू किया गया था, और इसका मुख्य उद्धेश्य था – चिकित्सा की पश्चिमी पद्धति (मुख्यतः एलौपैथी) हेतु चिकित्सा विज्ञान की उपाधि हेतु न्यूनतम अहर्ताएं तय करना। यदि इसकी परिभाषा देखें तो स्पष्ट होता है कि ''पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान'' यानी एलौपैथिक चिकित्सा, प्रसूति एवं स्त्री रोग तथा शल्य चिकित्सा। परंतु इसमें होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा पद्धतियों को शामिल नहीं किया गया है।

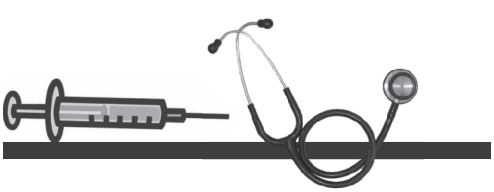

इस कानून की धारा–3 के अंतर्गत अवैध रूप से उपाधि देने का निषेध किया गया है। इसी तरह धारा–4 के अंतर्गत अर्थदंड का प्रावधान होने वाले अपराधों के विरुद्ध न्यायालय तभी संज्ञान ले सकेंगे जबकि कोई शिकायत राज्य सरकार या मेडिकल रजिस्ट्रेशन करने वाली राज्य परिषद से अनुमोदित हो।

गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम–1971

he Medical Termination of Pregnancy Act -197

And

गर्भ का चिकित्सकीय समापन (संशोधन) अधिनियम–2002

(The Medical Termination of Pregnancy (Amandment) Act-2002)

यह भारत के सबसे छोटे कानूनों में से है और इसमें महज 8 धाराएं है। इस कानून को लागू करने के पीछे उद्देश्य यह है कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में ही गर्भपात को किसी पंजीकृत चिकित्सक से ही कराया जाए। इस कानून के अंतर्गत चिकित्सक यदि लापरवाही करता है तो उसे दंडित किए जाने का प्रावधान भी किया गया है। इसमें गर्भपात हेतु निम्न दो स्थितियों को संज्ञान लिया गया है।

(1) जहां पर गर्भावस्था की अवधि 12 हफ्ते से अधिक हो एवं (2) जिन मामलों में गर्भावस्था की अवधि 20 हफ्ते से कम हो, गर्भपात कानून के वर्तमान प्रावधानों के अनुसार यदि गर्भावस्था की अवधि 12 हफ्तों से कम की है तो किसी एक चिकित्सकीय मत के आधार पर गर्भपात किया जा सकता है। यदि गर्भावस्था की अवधि 12 हफ्तों से अधिक परंतु 20 हफ्तों से कम हो तो दो चिकित्सकों से मत लेने के बाद ही गर्भपात किया जा सकता है। वर्तमान कानून के अनुसार 20 हफ्ते से अधिक अवधि के गर्भ को नहीं गिराया जा सकता।

परंतु सर्वोच्च न्यायालय ने 25 जुलाई 2016 को एक असाधारण निर्णय देते हुए महिला व उसके गर्भ में पल रहे बच्चे की विशिष्ट स्थिति के मद्देनजर 24 हफ्ते के गर्भ को गिराने की अनुमति दे दी। गौरतलब है कि भारत में गर्भपात की अनुमति तभी दी जा सकती है जबकि माँ के जीवन को खतरा हो। जबकि दुनिया के तमाम देशों में बच्चे के असामान्य होने की दशा में भी गर्भपात की अनुमति है। इसी तरह अवधि को लेकर भी विभिन्न देशों में अलग–अलग समय सीमा निश्चित है। इस मामले में सरकार ने भी कहा है कि यदि गर्भ से माँ को खतरा हो तो यह कानून ऐसी स्थिति में गर्भपात का निषेध नहीं करता है। बहरहाल यह एक विशिष्ट मामले में दिया गया निर्णय है और अवधि बढ़ाने वाली याचिका पर सर्वोच्च न्यायालय अभी विचार कर रहा है।

इसके अलावा नाबालिग एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ गर्भवती लड़कियों महिलाओं के गर्भपात हेतु उनके पालक की लिखित सहमति भी अनिवार्य है। अगर गर्भपात के मामले में किसी भी प्रकार की चिकित्सकीय लापरवाही के प्रमाण मिलते हैं वह भारतीय दंड संहिता–1860 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

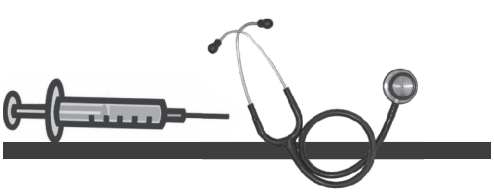

भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1956
The Indian Medical Council Act 1956

यह एक विस्तृत केंद्रीय कानून है। इसे मूलतः भारतीय चिकित्सा परिषद एवं भारत वर्ष में चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत विशेषज्ञों एवं संस्थाओं की पंजी को नियमित बनाने के लिए लागू किया गया। इस अधिनियम के माध्यम से केंद्र सरकार को अधिकृत किया गया है कि वह भारत में विश्वविद्यालयों द्वारा या स्वास्थ्य प्रतिष्ठानों द्वारा प्रदत्त उपाधि को मान्यता प्रदान कर सके। इसके माध्यम से मेडिकल काउंसिल आफ इंडिया संपूर्ण भारत में कार्यरत चिकित्सकों का रजिस्टर तैयार रखती है, जिसमें उनकी सम्पूर्ण जानकारी यथा नाम, पता व योग्यताओं की जानकारी होती है। यह अधिनियम परिषद को यह अधिकार भी प्रदान करता है कि वह देश भर में चिकित्सा शिक्षा का स्तर बनाए रखे। साथ ही साथ परिषद अपने सदस्यों की कार्यप्रणाली (Professional Conduct), शिष्टाचार एवं नैतिक मूल्यों पर भी निगरानी रखती है। इसमें किसी भी प्रकार की चूक होने पर व दोषी पाए जाने पर उस सदस्य का पंजीकरण निरस्त किया जा सकता है।

इस अधिनियम की परिभाषा अत्यंत विस्तृत है जिसके अनुसार

''स्वीकृत संस्थान'' जिससे आशय है अस्पताल, स्वास्थ्य केंद्र या ऐसा कोई भी संस्थान जिसे किसी विश्वविद्यालय से ऐसे संस्थान के रूप में मान्यता प्राप्त हो, जो कि प्रशिक्षण दे सकता है। साथ ही अध्ययन के लिए कोई ऐसा पाठ्यक्रम संचालित करता हो, जो कि किसी चिकित्सकीय योग्यता से जुड़ा हो।

''परिषद'' यहां परिषद से आशय भारतीय चिकित्सा परिषद से है।

भारतीय मेडिकल रजिस्टर, जिसे परिषद तैयार करती हो।

''चिकित्सकीय संस्थान'' अर्थात भारत में संचालित ऐसा कोई भी संस्थान जो कि मेडिसिन के क्षेत्र में डिग्री, डिप्लोमा या लाइसेंस प्रदान करता हो ।

''मेडिसिन'' इसका अर्थ है आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा। उसकी सभी शाखाएं जिसमें शल्य चिकित्सा (Surgery) एवं प्रसूति विज्ञान शामिल हैं। परंतु इसमें पशुओं की चिकित्सा एवं उनकी शल्य चिकित्सा शामिल नहीं है।

इसमें अलावा कानून को ठीक प्रकार से लागू करने के लिए भारतीय चिकित्सा परिषद (नियम)–1957 एवं भारतीय चिकित्सा परिषद नियम– 2000 भी लागू हैं।

भारत में चिकित्सा व्यवसाय में नैतिकता बनाए रखने हेतु भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम–1956 की धारा–33 में चिकित्सकों में नैतिकता बनाए रखने हेतु मापदंड (Code of Medical Ethics) भी तैयार किए गए हैं। यह घोषणा/शपथ उन सभी नए चिकित्सकों को अनिर्वायतः दी जाती है जो कि इस क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इसमें चिकित्सकों के कर्तव्यों को कुछ इस तरह व्यवस्थापित किया गया है –

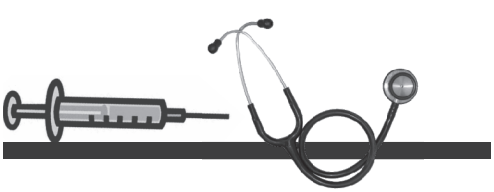

''मरीज की किसी भी स्थिति में अनदेखी नहीं होनी चाहिए। चिकित्सक यह चयन करने के लिए स्वतंत्र है कि वह उपचार करे। परंतु किसी भी आकस्मिकता की स्थिति में अनुरोध करने पर पीड़ित की मदद करना होगी। चिकित्सक यदि एक बार मामला हाथ में ले लेता है तो फिर न तो वह उपचार में लापरवाही कर सकता है और न ही मरीज को यथोचित नोटिस दिए बिना मामले से बाहर आ सकता है (मरीज को छोड़ सकता है), कोई भी पंजीकृत चिकित्सक भले ही वह परिविक्षा पर हो या पूर्ण पंजीकृत हो, जानबूझकर लापरवाही का कोई कृत्य नहीं कर सकता, जिससे कि उसके मरीज को आवश्यक चिकित्सकीय सहायता प्राप्त करने में रुकावट हो।''

इसके अलावा मेडिकल इथिक्स वाले अध्याय का अनुच्छेद 4 आपरेशन के बाद चिकित्सक द्वारा दी जाने वाली सेवाओं की बात करता है। कुल मिलाकर यह कानून भारतीय चिकित्सा जगत का आधार स्तंभ है। वैसे सरकार ने हाल ही में नया भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम संसद से पारित कराया है। अभी वह पूर्णतया लागू नहीं हो पाया है।

गर्भधारण पूर्व और प्रसूति निदान तकनीक (लिंग चयन) प्रतिषेध अधिनियम, 1994

The Pre&conception and Pre&Natal Diagnostic Techniques (Prohibition of Selection) Act-1994

विज्ञान की किसी मानवीय पहल का कितना अमानवीय दुरुपयोग हो सकता है उसका उदाहरण है भ्रूण की विकृतियों को प्रसवपूर्व पहचानने की तकनीक का दुरुपयोग जिन उद्धेश्यों को लेकर चिकित्सा विज्ञान ने इसे विकसित किया उसके सर्वथा विपरीत आचरण आज हो रहा है। इस दुरुपयोग में चिकित्सक और समाज दोनों ही शामिल हैं। यदि सैद्धांतिक और नैतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो इसमें अधिक त्रुटि चिकित्सा जगत की ही नजर आती है, क्योंकि उनके पास ''न'' कहने का पूरा अधिकार है परंतु नैतिक पतन किसी भी व्यवसाय में संभव है। इस कानून की आवश्यकता क्यों पड़ी इसकी पृष्ठभूमि जानना भी आवश्यक है।

सन् 1980 के दशक में भारत के शहरी क्षेत्रों में प्रसवपूर्व जांच केंद्रों की बाढ़ सी आ गई। इनके माध्यम से जांच तकनीकों के द्वारा भ्रूण का लिंग का पता लगा पाना संभव हो गया था। ऐसे केंद्र जबरदस्त लोकप्रिय हो गए, क्योंकि तमाम भारतीय परिवारों में लड़कियों का जन्म बहुत स्वागत योग्य नहीं माना जाता है। अतएव यह केन्द्र कन्या भ्रूण हत्या के केंद्र बन गए और इससे न केवल महिलाओं की जनसंख्या में लगातार कमी आना शुरु हुई बल्कि उनके सम्मान और गरिमा को भी ठेस पहुंची। अतएव इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि इस तकनीक का नियमन किया जाए और इस पर कानूनी नियंत्रण व निगरानी भी रखी जाए। साथ ही इसके दुरुपयोग को रोकने हेतु कठोरता बरती जाए। इस मामले पर संसद में चर्चा हुई और Pre-natal Diagnostic Tecniques (Regulation and Preventoin of Misuse) Bill-1991 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। चर्चा के पश्चात इसे सितंबर 1991 में दोनों

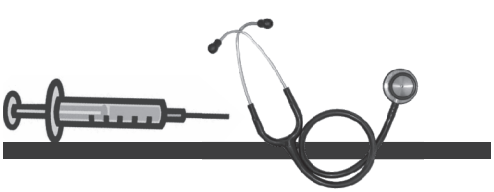

सदनों की संयुक्त संसदीय समिति के पास भेज दिया गया। संयुक्त समिति ने दिसंबर 1992 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसकी अनुशंसाओं के आधार पर संसद में यह विधेयक पुनः प्रस्तुत किया गया। संसदीय समिति ने इस अधिनियम एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि यह प्रस्तावित अधिनियम प्रसव पूर्व निदान तकनीकों के माध्यम से भ्रूण लिंग परीक्षण को प्रतिबंधित करने हेतु है। क्योंकि इन तकनीकों से कन्या भ्रूण हत्याएं हो रही हैं। किसी तकनीक का भेदभावपूर्ण दुरुपयोग महिलाओं के विरुद्ध है एवं यह महिलाओं की गरिमा एवं स्तर को प्रभावित करता है। अतएव इस तकनीक के इस्तेमाल के नियमन की आवश्यकता है और इसमें इस अमानवीय कृत्य को रोकने हेतु कठोर दंड का प्रावधान भी है।

समिति ने इस संबध में अनेक प्रावधान व प्रस्ताव किये थे। इनमें प्रमुख हैं –

- भ्रूण का लिंग निर्धारण हेतु प्रसवपूर्व निदान तकनीकों के दुरुपयोग पर रोक। इसी की वजह से कन्या भ्रूण हत्याएं हो रही हैं।
- लिंग निर्धारण हेतु इन तकनीकों के विज्ञापन पर रोक।
- किन्हीं विशिष्ट जेनेटिक (आनुवांशिक) असामान्यताओं या खराबी हेतु प्रसवपूर्व निदान तकनीकों का नियमन एवं अनुमति।
- इन तकनीकों को विशिष्ट परिस्थितियों में पंजीकृत संस्थानों के माध्यम से ही इस्तेमाल की अनुमति।

प्रस्तावित विधेयक में इसके उल्लंघन पर दंड का प्रावधान

उपरोक्त उद्धेश्यों को इस अधिनियम में पूरी तरह से अपनाया। गौरतलब है कि पूर्व निर्धारित स्थल (जिस स्थान पर लाइसेंस जारी हुआ है) के अलावा कहीं भी ऐसे परीक्षण नहीं किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्णतया दक्ष व्यक्ति ही ऐसे परीक्षण के लिए अधिकृत है। अल्ट्रसाउंड मशीनों की बिक्री को लेकर भी कठोर नियम है। नियमों की पूर्ति के पश्चात ही इन्हें खरीदा जा सकता है। परंतु यह स्पष्ट है कि लिंग निर्धारण के लिए किसी भी सूरत में इस तकनीक का प्रयोग पूर्णतः प्रतिबंधित है। साथ ही साथ कानूनन यह भी जरुरी है कि पूरी तरह से दक्ष एवं पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त चिकित्साकर्मी ही इस तरह की जांच करें। इस अधिनियम में यह स्पष्ट किया गया है कि जांचकर्ता न तो गर्भवती महिला से गर्भ के लिंग के बारे में न तो शब्दों या संकेतों या किन्हीं भी अन्य तरीको से कुछ भी संप्रेषित करें।

इस कानून के प्रावधानों का उल्लंघन किया जाता है तो

यदि कोई भी व्यक्ति भ्रूण के लिंग परीक्षण के संबंध में प्रचार/विज्ञापन करता पाया जाता है तो उसे तीन वर्ष तक की सजा भुगतनी होगी एवं 10 हजार रु. तक का जुर्माना अदा करना होगा।

इसी तरह कोई भी चिकित्सकीय जेनेसिस्ट, स्त्री रोग विशेषज्ञ, पंजीकृत चिकित्सकीय प्रेक्टिशनर या जेनेटिक काउंसलिंग सेंटर का स्वामी, या जेनेटिक परीक्षणशाला का कोई कर्मचारी/स्वामी इस कानून का उल्लंघन करते पाया जाता है तो (प्रथम बार में) उसे तीन वर्ष की सजा व दस हजार रु. तक का दंड हो सकता है। बाद में पुनः दोषी पाए जाने पर सजा की अवधि 5 वर्ष एवं 50 हजार तक का जुर्माना हो

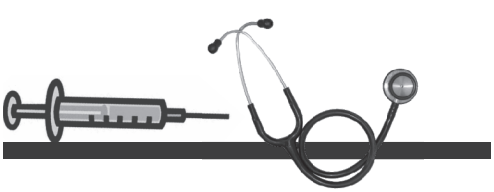

सकता है। इसके अतिरिक्त रजिस्ट्रेशन भी निलंबित किया जा सकता है।

इसके अलावा कोई अन्य व्यक्ति जिसमें गर्भवती महिला भी शामिल है यदि लिंग चयन का प्रथम प्रयास करते हैं तो उन्हें तीन साल तक की सजा एवं 50 हजार रु. तक जुर्माना भरना पड़ सकता है। बाद में इस प्रकार का अपराध यदि दोहराया जाता है तो सजा की अवधि पांच वर्ष तक एवं जुर्माना राशि एक लाख रु. तक हो सकती है।

ड्रग्स एवं कास्मेटिक अधिनियम–1940
The Drugs and Cosmatic Act-1940

हम सभी इस बात को अच्छे से समझते हैं कि यदि औषधियों की गुणवत्ता पर नियंत्रण नहीं रखा जाएगा तो चिकित्सा विज्ञान का लाभ उठा पाना ही असंभव है। इस अधिनियम के अंतर्गत न केवल औषधि निर्माण की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु एक अत्यंत उच्चस्तरीय समिति के गठन का प्रावधान (The Drugs Technical Advisory Board) बल्कि यह भी स्पष्ट तौर पर उल्लेख है कि औषधि को किन–किन कारणों से नकली या कम गुणवत्ता का माना जाएगा। इसमें उस स्थिति में भी दंडित करने का प्रावधान है, जिसमें कि यदि औषधियों उपकरणों आदि की गुणवत्ता मानक स्तर की नहीं पाई जाती द्य नियमों के उल्लघंन को लेकर भी कड़े प्रावधान हैं। इसमें प्रावधान है कि यदि आयातित सामग्री स्तरीय नहीं है तो संबंधित व्यक्ति को तीन वर्ष के कारावास और 5 हजार रु. तक का दंड दिया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति दूसरी बार दोषी पाया जाता है तो सजा की अवधि पांच वर्ष तक और जुर्माना 10 हजार रु. तक हो सकता है।

इसके अलावा यदि कोई व्यक्ति उपचार अथवा निदान हेतु उपयोग लाई जाने वाली नकली औषधि बेचता हुआ पाया जाता है तो उसे कम से कम 10 वर्ष की सजा हो सकती है, इससजा को उम्रकैद तक बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा दंड की राशि कम से कम 10 लाख रु. या जब्त की गई सामग्री के मूल्य के तीन गुना तक हो सकती है। यह प्रावधान आयुर्वेद, सिद्ध एवं यूनानी औषधियों पर भी लागू होते हैं। (धारा 33 ई ई बी) केंद्र सरकार जनहित में दवाई के उत्पादन पर रोक भी लगा सकती है।

ड्रग्स एवं कास्मेटिक अधिनियम के अंतर्गत ही भारत में ड्रगट्रायल की अनुमति दिए जाने का प्रावधान है। सन् 2005 में भारत द्वारा डंकल समझौते पर हस्ताक्षर कर देने के बाद इसे लेकर कानून में काफी शिथिलता आती दिखाई दी। इसके परिणामस्वरूप भारत एकाएक विकसित देशों की महाकाय दवा कंपनियों के लिए दवा परीक्षण, क्लिनिकल ट्रायल का पसंदीदा स्थान बन गया। धीरे–धीरे यह एक विशाल व्यापार में तब्दील हो गया। कानून की शिथिलता और आम आदमी की अज्ञानता के अलावा भारतीय समाज में चिकित्सक को भगवान के बाद सर्वोच्च दर्जा देने की संस्कृति ने भी अनेक प्रकार के अवैध क्लिनिकल ट्रायल के लिए जमीन तैयार कर दी। अनेक विशेषज्ञ चिकित्सकों ने करोड़ों रुपयों की कमाई की, इसके अलावा हजारों मरीजों की या तो परीक्षण के दौरान मृत्यु हुई अथवा उनके स्वास्थ्य पर गंभीर विपरीत प्रभाव पड़े।

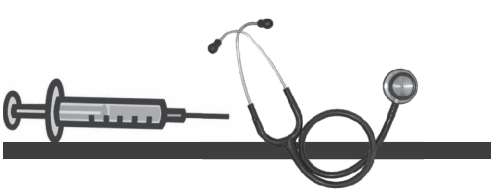

इसे लेकर इंदौर (म.प्र.) की एक गैर सरकारी संस्था स्वास्थ्य अधिकार मंच ने सर्वोच्च न्यायालय में सन् 2012 में जनहित याचिका दायर की। गौरतलब है कि देशभर में अनेक स्थानों पर बड़ी संख्या में क्लिनिकल ट्रायल हो रहे थे। अधिकांश स्थानों पर परीक्षण विषय, (Trial Subject) अर्थात मरीज को अंधेरे में रखकर उनसे सहमति ली जा रही थी। इतना ही नहीं चूंकि ड्रग एवं कास्मेटिक अधिनियम में ट्रायल के दौरान मृत्यु अथवा स्वास्थ्य पर गंभीर विपरीत परिणामों को लेकर दिशा निर्देशों का सर्वथा अभाव था, अतएव ठेकेदारों (सीआरओ, Contract Research Organisation) की चांदी हो गई थी। किसी भी पीड़ित को मुआवजा ही नहीं मिल पा रहा था। इतना ही नहीं तमाम अनावश्यक (जिनकी भारत में आवश्यकता नहीं है) दवाओं के भी परीक्षण चल रहे थे। जनहित याचिका पर सुनवाई के दौरान (अभी अंतिम निर्णय नहीं आया है) सर्वोच्य न्यायालय ने इसके नियमन के लिए अनेक महत्वपूर्ण आदेश दिए, जिनमें जिस व्यक्ति पर ट्रायल हो रहा है उसकी जानकारी मूलक सहमति की वीडियोग्राफी करना तक शामिल है। इसके अलावा देश में ड्रग ट्रायल को लेकर कुछ मापदंड स्वीकृत किए गए। सर्वोच्च न्यायालय के दखल के बाद से भारत में ड्रग ट्रायल कमोवेश बंद से हो गए हैं।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986
The Consumer Protection Act-1986

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम उपभोक्ताओं के हित संरक्षित करने की दिशा में एक क्रांतिकारी पहल के रूप में सामने आया है। यह न्याय प्रदान करने की एक वैकल्पिक एवं सुगम व्यवस्था है जिसके अंतर्गत अल्पअवधि प्रक्रिया (Summary Trial) के माध्यम से प्रकरणों के निपटारे की प्रक्रिया की जाती है। यह कानून उन सभी व्यक्तियों अर्थात उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करता है जिन्होंने या तो किसी वस्तु का क्रय किया है अथवा किसी प्रकार की सेवाओं का उपयोग किया हो। यहां इस बात पर गौर करना आवश्यक है कि ऐसी कोई भी सेवा जो कि ''निःशुल्क'' प्रदान की गई हो, इस कानून के दायरे में नहीं आती है। गौरतलब है जैसे–जैसे भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता की ओर लोगों का ध्यान बढ़ता गया वैसे–वैसे स्वास्थ्य क्षेत्र में हो रही लापरवाहियों एवं अनिमितताओं से निवारण के लिए भी इसका उपयोग बढ़ता चला गया। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि मरीज को सिर्फ स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच का ही अधिकार नहीं है बल्कि गुणवत्तापूर्ण उपचार पाने का भी आधिकार है। यह कानून उपभोक्ता को शोषण से भी बचाता है।

इस कानून के अंतर्गत दो तरह के उपभोक्ताओं को चिन्हित किया गया है –

(अ) ऐसा व्यक्ति जो कि किसी वस्तु का उपभोक्ता है।

(ब) ऐसा व्यक्ति जो कि किसी सेवा का उपभोक्ता है।

हम यहां मुख्यतः चिकित्सा सेवाओं में व्याप्त लापरवाही पर चर्चा कर रहे हैं अतएव उपभोक्ता संरक्षण कानून की धारा 2 (1)(0) में दी गई परिभाषा पर गौर करते हैं। कानून के अंतर्गत इस परिभाषा को तीन हिस्सों में बाटा गया है। यह हैं मुख्य भाग, समावेशी भाग एवं अपवर्जन (बहिष्कार) भाग। इसे इस तरह से समझा जा सकता है कि –

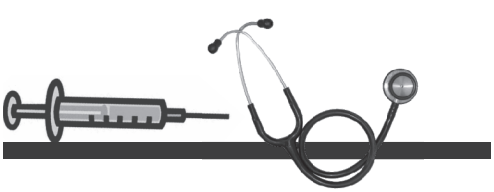

- मुख्य भाग सेवाओं की प्रकृति को समझाता है और किसी भी व्यक्ति को दी गई सेवाओं का वर्णन करता है।
- समावेशी भाग मुख्यतः बैंकिंग, वित्तीय, बीमा, ट्रांसपोर्ट, प्रोसेसिंग आदि से जुड़ी सेवाओं को समाहित करता है।
- वहीं तीसरा या अपवर्जन भाग दो तरह की सेवाओं को इस परिभाषा में शामिल न करने पर जोर देता है। यह हैं ऐसी सेवाएं जो कि निःशुल्क प्रदान की गई हो और दूसरी वे ऐसी सेवाएं जो कि व्यक्तिगत सेवाओं की श्रेणी में आती हों।

उपभोक्ता संरक्षण कानून एवं चिकित्सा सेवाएं

गौरतलब है कि किसी भी प्रकार का अस्पताल, फिर चाहे वह सरकारी अस्पताल हो या गैर सरकारी, नर्सिंग होम, स्वास्थ्य केंद्र, क्लिनिक, मेडिकल प्रेक्टिशनर, केमिस्ट, जांच केंद्र, पैरा–मेडिकल कर्मचारी, नर्सिंग स्टाफ एवं स्वास्थ्य से अन्य जुड़े हुए सभी व्यक्ति इस कानून के दायरे में आते हैं। यदि चिकित्सा सेवाओं के संबंध में बात करें तो कानून के समावेशी भाग में चिकित्सा सेवाओं को लेकर कोई प्रावधान नहीं है। सिर्फ मुख्य भाग एवं अपवर्जन में इसे लेकर प्रावधान किए गए हैं। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सन् 1996 में इंडियन मेडिकल एसोसिएशन बनाम वी.पी. सांथा वाले निर्णय को नजीर माना जा सकता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किस स्थिति में यह इस कानून के अंतर्गत चिकित्सा सेवा की श्रेणी में आती है और किस श्रेणी में नहीं। इसके अनुसार –

(1) किसी मेडिकल प्रेक्टिशनर द्वारा किसी मरीज को कंसल्टेशन, निदान या उपचार हेतु प्रदत्त की गई सेवाएं इस कानून की धारा 2(1)(0) के अंतर्गत सेवा की श्रेणी में आती हैं।

(2) ऐसा चिकित्साकर्मी (मेडिकल प्रेक्टिशनर) जो कि किसी ऐसे अस्पताल/नर्सिंग होम से जुड़ा (Attach) है, जहां पर सभी स्वास्थ्य अधिकारी, जिन्हें नियुक्त किया गया हो और वे सभी मरीजों का निःशुल्क उपचार करते हों। इस कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं।

(3) कोई ऐसा गैरसरकारी अस्पताल नर्सिंग होम जहां पर किसी भी व्यक्ति से कोई शुल्क नहीं लिया जाता हो, वह इस कानून की जद में नहीं आता।

(4) किसी ऐसे गैरसरकारी अस्पताल नर्सिंग होम में यदि सेवाएं दी गई हों और जहां पर कुछ लोगों से शुल्क लिया जाता हो और कुछ से नहीं, वह इस कानून की धारा 2(1)(0) की परिधि में आती हैं। भले ही फिर उस गरीब व्यक्ति से कोई भी शुल्क न लिया गया हो। जिस व्यक्ति को निःशुल्क चिकित्सा सेवा प्राप्त हुई है, उपरोक्त कानून के अंतर्गत उसे भी उपभोक्ता माना जाएगा।

(5) ऐसे सरकारी अस्पताल, स्वास्थ्य केंद्र, डिस्पेंसरी जहां पर किसी भी मरीज से कोई शुल्क नहीं लिया जाता हो वह इस कानून की परिधि में नहीं आते हैं।

(6) ऐसे सरकारी अस्पताल, स्वास्थ्य केंद्र, डिस्पेंसरी जहां पर कुछ व्यक्तियों से शुल्क लिया जाता हो और अन्य से नहीं, वह धारा 2(1)(0) की परिधि में आता है। जिस गरीब व्यक्ति से शुल्क नहीं भी लिया गया हो, उसे भी इस कानून के अंतर्गत उपभोक्ता माना जाएगा।

(7) ऐसी परिस्थिति में जहां नियोक्ता के खर्च पर कर्मचारी का या उसके परिवार का उपचार हो रहा हो, उस स्थिति में मेडिकल प्रेक्टिशनर या हास्पिटल, नर्सिंग होम निःशुल्क उपचार की पात्रता नहीं

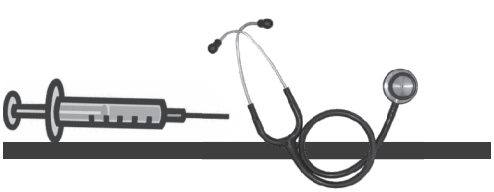

रखते हैं और उनके द्वारा दी जाने वाली सेवाएं इस कानून के अंतर्गत सेवाएं ही कहलाएंगी।

(8) अधिकांश सरकारी अस्पतालों में भुगतान करने वालों के वार्ड अलग से बने होते हैं जिनमें रसूखदार भर्ती होते हैं और जनरल वार्ड में गरीब मरीज भर्ती होते हैं, जहां पर उनका मुफ्त उपचार होता है। वहां पर दोनों श्रेणी के मरीज इस कानून के अंतर्गत पात्र कहलाएंगे।

निम्न स्थितियों में शिकायत की जा सकती है–

(1) कोई भी अनुचित या प्रतिबंधित व्यापार प्रक्रिया, जिसे किसी व्यापारी या चिकित्सक द्वारा प्रयोग में लाया गया हो।

(2) किसी उपभोक्ता या उसके द्वारा नियत किए गये व्यक्ति द्वारा खरीदी गई वस्तु का दोषपूर्ण होना।

(3) ली गई सेवा (जिस पर कि सहमति बनी हो) में किसी भी प्रकार की कमी का पाया जाना।

(4) किसी व्यापारी द्वारा तयशुदा मूल्य से अधिक मूल्य लेना या कानून द्वारा तय की गई राशि से अधिक वसूलना।

कौन हो सकता है शिकायतकर्ता

शिकायतकर्ता से अभिप्राय है ''ऐसा व्यक्ति जिसने भी शिकायत दर्ज करवाई हो।'' इससे यह भी आशय है कि ऐसा व्यक्ति जिसने किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने के लिए आरोप लगाया हो।

कानून की धारा 2(1)(इ) के अंतर्गत ''शिकायतकर्ता'' से आशय यह है –

(1) एक उपभोक्ता या

(2) कोई भी स्वयंसेवी संस्था (एसोसिएशन) जो कि कंपनी कानून, 1956 या उस समय लागू किसी कानून के अंतर्गत पंजीकृत हो। या,

(3) केंद्र सरकार या कोई भी राज्य सरकार या

(4) एक या अधिक उपभोक्ता, जहां पर अनेक उपभोक्ताओं के एक से हित हो

(5) उपभोक्ता की मृत्यु होने की स्थिति में, उसका कानूनी उत्तराधिकारी अथवा प्रतिनिधि

कब तक दर्ज हो सकता है प्रकरण?

उपभोक्ता विवाद को लेकर कोई भी परिवाद घटना घटित होने के दो वर्ष के भीतर दर्ज हो जाना चाहिए।

सुनवाई

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत चार स्तरों पर सुनवाई की जाती है।

(1) जिला फोरम (यह प्रत्येक जिले में स्थित होता है) इसके अंतर्गत 20 लाख रु. तक के दावे किए जा सकते हैं।

(2) राज्य फोरम यह प्रत्येक राज्य में एक होता है। इसके अंतर्गत 20 लाख रु. से अधिक, लेकिन 1 करोड़ रु. से कम के दावे किए जा सकते हैं। इसके अलावा यह जिला फोरम के निर्णय के खिलाफ

भी सुनवाई करता है।

(3) राष्ट्रीय फोरम इसमें वस्तु या सेवा या मुआवजे की राशि 1 करोड़ से अधिक होने पर ही प्रतिवाद दायर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय फोरम राज्य फोरम के निर्णयों के खिलाफ सुनवाई भी करता है।

(4) सर्वोच्च न्यायालय में अपीलय राष्ट्रीय आयोग के निर्णय से संतुष्ट न होने वाले व्यक्ति इसके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में जा सकते हैं।

चूंकि यह अत्यंत विस्तृत कानून है और इसमें स्वास्थ्य संबंधी अनिमितताओं को लेकर अत्यंत विशिष्ट प्रावधान भी हैं, अतएव इसका विस्तृत अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। गौरतलब है कि उपभोक्ता फोरम का प्रत्येक निर्णय अदालत का निर्णय माना जाता है और इसका पालन न करने पर स्थानीय अदालत के माध्यम से इसे लागू कराया जा सकता है। उपभोक्ता न्यायालय संबंद्ध व्यक्ति (जो कि निर्णय का पालन न कर रहा हो) की संपत्ति का अधिग्रहण भी कर सकते हैं और उसकी बिक्री भी कर सकते हैं।

मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनियम–1994
The Transplantation of Human Organs Act-1986

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपचार हेतु मानव अंगों को निकालने, भंडारण और प्रत्यारोपण को नियमानुकूल बनाने के साथ ही साथ मानव अंगों की व्यावसायिक तौर पर होने वाली खरीद–फरोख्त को कठोरता से रोकना है। गौरतलब है आजकल भारत में मानव अंगों का व्यापार बड़े पैमाने पर होने लगा है। इसमें किडनी का लेन–देन सबसे ज्यादा है। देश के सर्वाधिक प्रतिष्ठित अस्पतालों में से कई मानव अंगों के अवैध प्रत्यारोपण में लिप्त पाए गए हैं। अनेक वंचित गांवों में तो किडनी बेचना सामूहिक व्यवसाय का रूप ले चुका है। दिल्ली जैसे शहरों में तो घरों में अवैध रूप से अंग प्रत्यारोपण हेतु नर्सिंग होम संचालित हैं। सबसे दुखद एवं त्रासद बात यह है कि अंग प्रत्यारोपण चिकित्सा विज्ञान का कमोवेश सबसे कौशलपूर्ण कार्य है और इसमें अत्यधिक कुशलता की आवश्यकता होती है। परंतु यही विशेषज्ञ गैरकानूनी प्रत्यारोपण में लिप्त पाए जाते हैं।

इस अधिनियम की परिभाषा में निम्न तत्वों का समावेश है,

(1) मस्तिष्क कोशिका मृत्यु (brain stemdeath) का अर्थ है कि ऐसी स्थिति, जिसमें मस्तिष्क की सभी कोशिकाओं ने स्थायी रूप से व कभी दोबारा ठीक न होने की स्थिति में आकर कार्य करना बंद कर दिया है। इस स्थिति को कानून के अनुच्छेद–3 की उपधारा में व्याख्यायित किया गया है।

(2) ''मृत व्यक्ति'' से आशय ऐसे व्यक्ति से है जिसमें जीवन के चिन्ह स्थायी तौर पर गायब हो चुके हैं। यह स्थिति ब्रेन स्टेमडेथ या हृदयगति रुकने से जीवन में किसी भी क्षण घटित हो सकती है।

(3) ''Donor या दाता'' का अर्थ है – ऐसा कोई भी व्यक्ति जिसकी उम्र अठारह वर्ष से कम की न हो और वह अपनी इच्छा से अपने किसी मानव अंग को उपचार (निदान) की दृष्टि से इस कानून की धारा–3 की उपधारा 1 एवं 2 के अंतर्गत निकालने की अनुमति दे दे।

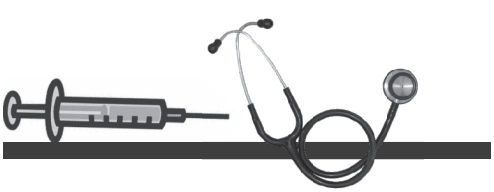

(4) मानव अंग (Human Organ) से आशय है मानव शरीर का ऐसा कोई भी हिस्सा जो कि टिश्यू से निर्मित हो और यदि उसे पूरा निकाल लिया जाए तो शरीर उसे दोबारा बना पाने की स्थिति में न हो।

(5) प्राप्त करने वाला या Recipient से आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जिसके शरीर में कोई मानव अंग का प्रत्यारोपण प्रस्तावित है।

(6) चिकित्सकीय उद्देश्य (Therapeutic purpose) का अर्थ है किसी बीमारी का सुविचारित (Systematic) उपचार या किसी विशिष्ट प्रणाली या रूपात्मकता (Modality) के अनुसार स्वास्थ्य सुधार हेतु प्रयास।

(7) प्रत्यारोपण (Transplatation) का अर्थ है किसी मानव अंग को किसी जीवित व्यक्ति या मृत व्यक्ति से निकालकर चिकित्सकीय उद्देश्य हेतु किसी अन्य जीवित व्यक्ति में उपरोपण (Graft) करना।

इस कानून की धारा 3 में उल्लेख है कि मानव अंग निकालने की अनुमति किसे है?

- धारा 9 में समझाया गया है कि किन स्थितियों और परिस्थितियों में मानव अंगों को निकालने एवं प्रत्यारोपण पर निषेध है।
- धारा 11 के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि मानव अंगों का प्रत्यारोपण सिर्फ चिकित्सकीय उद्देश्यों से ही हो सकता है।
- धारा 12 के अंतर्गत दाता एवं प्राप्त करने वाले दोनों को इसके प्रभाव आदि के बारे में पूरी जानकारी देने को कानून ने बाध्यकारी बनाया गया है।
- धारा 14 उन अस्पतालों के पंजीयन के संबंध में हैं जहां पर मानव अंगों को निकालने, रखने या प्रत्यारोपण का कार्य किया जाना है।
- धारा 18 बिना अधिकार प्राप्त किए मानव अंगों को निकालने के लिए दंड के प्रावधान से संबंधित है। इसके अंतर्गत

1) इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी व्यक्ति जो मानव अंग निकालने में अवैध रूप से संबद्ध पाया जाएगा उसे 5 वर्ष तक की सजा और 10,000 रु. तक जुर्माना भुगतना पड़ सकता है। (धारा 18 (1)

2) यदि धारा 18 (1) के अंतर्गत दोषी पाया गया व्यक्ति मेडिकल प्रेक्टिशनर हो तो राज्य चिकित्सा परिषद (State Medical Council) पहली बार अपराध करने से उसका रजिस्ट्रेशन 2 वर्ष के लिए निलंबित कर देगी। यदि इसके बाद फिर कभी वह दोषी पाया जाता है तो उसका रजिस्ट्रेशन स्थायी रूप से रद्द कर दिया जाएगा।

धारा 19 मानव अंगों की व्यावसायिक खरीदी–बिक्री के लिए दंड से संबंधित है। इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी व्यक्ति –

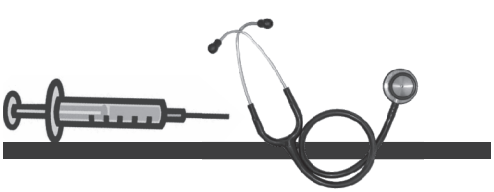

. जिसे किसी मानव अंग की आपूर्ति के लिए धन की प्राप्ति होती है या आपूर्ति के लिए धन का प्रस्ताव दिया जाता है।

इ. जो ऐसे व्यक्ति को खोजता है जो कि भुगतान पाने के एवज में मानव अंग की आपूर्ति कर सकता हो।

ब. भुगतान की शर्त पर मानव अंग की आपूर्ति का प्रस्ताव दे।

क. भुगतान पर मानव अंग उपलब्ध कराने की पहल करे या आपसी समझौते का इंतजाम करे या प्रस्ताव दे।

म. ऐसी किसी इकाई के प्रबंधन में हिस्सा लेता हो जो कि उपधारा डी के अंतर्गत आती हो। यानी मानव अंगों के अवैध व्यापार में संलग्न हो। इसमें कोई भी सोसाइटी, फर्म, कंपनी सभी शामिल है।

मानव अंगों के व्यापार से संबंधित किसी भी तरह के विज्ञापन का प्रकाशन अथवा वितरण का कार्य किया हो। इसके अंतर्गत –

1– मानव अंगों की आपूर्ति के लिए व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया हो।

2– भुगतान के आधार पर किसी को मानव अंग की आपूर्ति हेतु प्रस्ताव दिया हो।

3– विज्ञापन दर्शा रहा हो कि इसके माध्यम से मानव अंग की बिक्री (धारा क) हेतु पहल या समझौते को तत्पर है।

उपरोक्त स्थितियों में यह न्यायालय के विवेकाधीन है कि वह कितनी सजा देय परंतु यह सजा न्यूनतम दो वर्षों की होगी और 10,000 रु. का न्यूनतम आर्थिक दंड किया जाएगा।

नोट अधिकतम सजा व जुर्माने के बारे में यह अधिनियम मौन है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम–2005
Protection Women from Domestic Violence Act-2005

हिंसा और चिकित्सा का गहरा संबंध है। हिंसा से पीडित व्यक्ति को विशेषकर महिलाओं को तुरंत चिकित्सकीय सहायता की आवश्यकता पड़ती है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम–2005 एक क्रांतिकारी व बदलाव लाने वाला प्रगतिशील कानून है। यह एक विस्तृत अधिनियम है अतएव इस पुस्तिका में अधिनियम के चिकित्सकीय पक्ष पर ही संक्षिप्त चर्चा करेंगे। किसी भी कार्यवाही हेतु इस अधिनियम का विस्तृत अध्ययन अनिवार्य है।

यदि हम इस अधिनियम की परिभाषा को ही देखें तो अध्याय–2 के अंतर्गत घरेलू हिंसा की परिभाषा कहती है कि –

(क) व्यथित व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन, अंग की या चाहे उसकी शारीरिक या मानसिक भलाई की अपहानि करता है या कोई चोट पहुंचाता है या उसे संकटापन्न करता है या उसकी ऐसा करने की

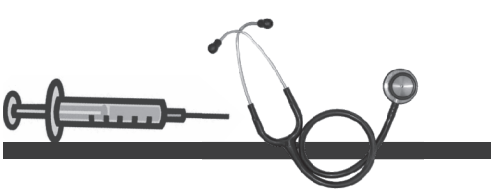

प्रवृत्ति है और जिसके अंतर्गत शारीरिक दुरुपयोग, लैंगिक दुरुपयोग, मौखिक और भावनात्मक दुरुपयोग और आर्थिक दुरुपयोग कारित करना भी है।

इसका आगे स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया गया है –

(1) ''शारीरिक दुरुपयोग'' से ऐसा कोई कार्य या आचरण अभिप्रेत है, जो ऐसी प्रकृति का है जो व्यथित (पीड़ित) व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा, अपहानि या उसके जीवन, अंग या स्वास्थ्य को खतरा कारित करता है या उससे उसके स्वास्थ्य का या विकास का ह्रास (नुकसान) होता है और इसके अंतर्गत हमला, आपराधिक अभित्रास और आपराधिक बल भी है।

(2) ''लैंगिक दुरुपयोग'' से लैंगिक प्रकृति को कोई आचरण अभिप्रेत (आशय) है जो महिला की गरिमा का दुरुपयोग, अपमान, तिरस्कार करता है या उसका अन्यथा अतिक्रमण करता है।

(3) ''मौखिक और भावनात्मक दुरुपयोग'' के अंतर्गत निम्नलिखित समाहित है –

(क) अपमान, तिरस्कार, उपहास, गाली और विशेष रूप से संतान या नर बालक न होने के संबंध में अपमान और उपहास और

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा कारित करने की लगातार धमकियां देना, जिसमें व्यथित व्यक्ति हितबद्ध है।

उपरोक्त संदर्भ में विवेचना करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि पीड़ित व्यक्ति को चिकित्सकीय सहायता की अनिवार्यता है। इसीलिए अध्याय–3 (7) में स्पष्ट उल्लेख है कि –

(7) चिकित्सकीय सुविधाओं के कर्तव्य, यदि साधारण भाषा में कहें तो यदि कोई पीड़ित व्यक्ति संरक्षण अधिकारी (Protection Officer) या सेवा प्रदाता (Service Provider) से मदद के लिए चिकित्सा सुविधा की मांग करती है तो उसे तुरंत यह उपलब्ध करवाई जानी चाहिए।

(9) किसी पीड़ित व्यक्ति को यदि कोई शारीरिक क्षति पहुंची हो तो उसका चिकित्सकीय परीक्षण करवाना तथा संबंधित मजिस्ट्रेट को चिकित्सकीय रिपोर्ट की प्रति प्रेषित करना।

धारा 10 (2) (ख) कथित पीड़ित व्यक्ति का चिकित्सकीय परीक्षण कराना और उस संरक्षण अधिकारी और पुलिस थाने को जिसकी स्थानीय सीमा के भीतर, घरेलू हिंसा हुई है, चिकित्सकीय रिपोर्ट की एक प्रति अग्रेषित करना।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि घरेलू हिंसा से संबंधित अधिनियम में चिकित्सकीय सहायता उपलब्ध करवाना कानूनी तौर पर अनिवार्य बनाया गया है।

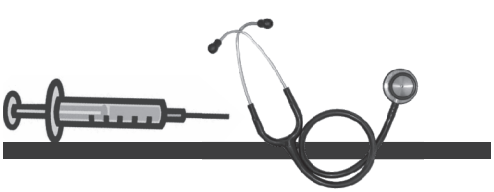

fu"d"k

''जो व्यक्ति औषधि लेता है उसे अनिवार्यत: दो बार स्वस्थ होना पड़ता है। एक बार अपनी बीमारी से और एक बार औषधियों से।

– विलियम आस्लर

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दुनिया दो अतियों पर निर्भर है। इसके एक छोर पर इस आदर्श व्यवसाय के माध्यम से जनहित को संवारने वाले लोग या चिकित्साकर्मी हैं तो दूसरी छोर पर इस व्यवसाय को व्यापार और व्यापार से लूट की श्रेणी में लाने वाले लोग भी हैं। हम यानि मरीज जो जाने अनजाने में स्वास्थ्य के इच्छुक या हितग्राही से उपभोक्ता में बदल गए, उनके सामने विकल्प लगातार कम होते जा रहे हैं। मानव शरीर के बनने की प्रक्रिया लाखों वर्षों की है। पहले शरीर विकसित हुआ और उसके बाद दिमाग। इन दोनों के आपसी सामंजस्य से मनुष्य और मनुष्यता आज यहां तक पहुंच पाई है। धीरे–धीरे दिल पर दिमाग हावी होता गया और चिकित्सा विज्ञान भी इससे अछूता नहीं रहा। दिल का इलाज अब मुहावरा नहीं, स्थिति बन गई है। व्यावसायिकता के लगातार हावी होने से चिकित्सा क्षेत्र भी नहीं बचा। परंतु यह कहकर चिकित्सा क्षेत्र मुक्ति नहीं पा सकता कि तो प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। गौर करिए कि किसी एक शहर की आबादी 15 लाख है और उसमें से करीब 1000 लोग मलेरिया या किसी अन्य बीमारी की वजह से अस्पताल में भर्ती हैं। यानी 14 लाख 99 हजार व्यक्ति स्वस्थ हैं तो उनके शरीर में ऐसा क्या है, जिससे कि वे इस बीमारी से ग्रसित नहीं हो रहे और वह कथित ''रिस्क फेक्टर'' में नहीं हैं। इसे हमारे सामने नहीं लाया जाता।

यह जो ''रिस्क फेक्टर'' है, इसने पूरे चिकित्सा क्षेत्र को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। हम सबको डरा कर यह व्यवसाय खूब फलफूल रहा है क्योंकि हम केवल बीमारी से ग्रसित नहीं होते हैं, हम जीवन के हास के भय से भी जूझते हैं। इसमें औषधि निर्माताओं आदि को भी शामिल करना होगा। गौर करिए आठ वर्ष तक अमेरिका में लगातार अध्ययन के बाद यह स्पष्ट हो गया कि सामान्य वयस्क का रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) 159/99 और डायबिटिक व्यक्ति का 140/90 होना चाहिए। यह शोध सन् 2013 में स्वीकृति प्राप्त कर चुका है। आज तक संभवतः किसी भी समाचारपत्र ने इसे प्रकाशित नहीं किया। इतना ही नहीं प्रेक्टिस करने वाले डाक्टरों में से अधिकांश को इसका भान तक नहीं है। यदि यह नया सिद्धांत प्रचलन में आ जाए तो करोड़ों लोग (मरीज) उच्च रक्तचाप की बीमारी से स्वतः मुक्त हो जाएंगे।

पद्मभूषण से सम्मानित प्रो. बी. एम. हेगड़े, जो कि एम.डी.पी.एच.डी, एफ.आर.सी.पी (लंदन, एडिनबर्ग,

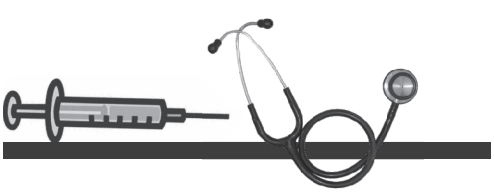

ग्लासगो, डबलिन) के अलावा भी तमाम उपाधियां प्राप्त कर चुके हैं, का कहना है कि ''मुझे लगता है चिकित्सकीय अविज्ञान को उद्योग के फायदे के लिए निर्मित किया गया है। कृपया याद रखिए कि जब चिकित्सा समुदाय की साझेदारी उद्योग के साथ हो जाएगी, तब वह असहाय मरीजों के लिए दुखद दिन होगा। परंतु इस क्षेत्र में तथ्यों के संबंध में लिखना अब तो मीडिया में भी तुच्छ समझा जाने लगा है। ''दि हिन्दू'' नियमित तौर पर मेरे आलेख छापता था परंतु अब वह भी छापने में घबराने लगे है। मुझे बताया गया कि यदि वे मेरे आलेख प्रकाशित करेंगे तो सोशल मीडिया (Social Medi) में उन्हें चकरघिन्नी बना दिया जाएगा।''

ऐसे में मीडिया सामाजिक संस्थाओं/संगठनों और चिकित्सा जगत की भूमिका को लेकर संवाद होना आवश्यक है। बातें तो ढेर सारी हैं, परंतु इस पुस्तिका को लेकर यही कहा जा सकता है कि इसे इस नजरिए से लिखा गया है कि हम चिकित्सा जगत को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जान और समझ पाएं, साथ ही इससे संबंधित विभिन्न कानूनों को प्राथमिक तौर पर पहचान पाएं। इसमें पुस्तिका सफल रही है या नहीं,यह तो आप ही बता पाएंगे।

विकास संवाद के बारे में

विकास संवाद एक समूह है जिसने अपने लिए समाज के मसलों पर लिखने–पढ़ने और संवाद करने भूमिका तय की है। मुख्यतः यह समूह तात्कालिक और व्यापक विषयों पर प्रवेशिकाएं प्रशिक्षण सामग्री, आलेखों के संकलन तैयार करता है वहीं दूसरी तरफ शोध, अध्ययन, समीक्षाएं भी करता है। इसका ज्यादातर ध्यान बच्चों के हकों, खाद्य सुरक्षा, गरीबी की बहस, विस्थापन, पलायन, हक आधारित कानूनों, सूचना का अधिकार, लोकतंत्र और लोक व्यवस्था सरीखे विषयों पर केंद्रित है। हर वर्ष विकास संवाद के द्वारा 4 अध्ययन एवं 15 प्रकाशन किए जाते हैं, और 35 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। इसी तरह हर साल लगभग 20 विश्लेषणपरक दस्तावेज और 200 से ज्यादा आलेख यहां तैयार किए जाते हैं। विकास संवाद का मुख्य काम लेखन है ताकि देख–सुन कर हम समझ सकें, समझ कर लिख सकें और लिख कर बदल सकें, जो बदल रहा है उसे फिर देख और लिख सकें।

विकास संवाद का असरदार काम मुख्यधारा के मीडिया को मुद्दों पर प्रखर बनाने में रहा है। पिछले वर्षों से यह समूह कुपोषण के समुदाय आधारित एकीकृत प्रबंधन की अवधारणा से शुरू करके उसके क्रियान्वयन की रुपरेखा बनाने में जुटा है हमारी कोशिश रही है कि समाज,खास तौर पर हाशिए पर धकेले जा रहे समुदायों,के मामलों को आवाज दी जा सके,ताकि नीतियों और बहसों के पटल से ये मिटा न दिए जाएं।

विकास संवाद द्वारा तैयार सामग्री के लिए आप इसे पते पर आ सकते हैं –
www.mediaforrights.org Phone Number : 0755 - 4252789

लेखक परिचय

चिन्मय मिश्र

पिछले दो दशकों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय। शुरूआत लोक व आदिवासी कलाओं एवं शिल्प के अध्ययन से। इसके बाद भारतीय पारंपरिक वस्त्र परंपरा यथा बुनाई, छपाई, रंगाई, कशीदाकारी, जरदौजी, बिछायक आदि का वृहद् अध्ययन, दस्तावेजीकरण एवं संकलन। इसी संदर्भ में भारत भर में करीब 250 केन्द्रों/स्थानों का भ्रमण। इस विषय पर दो पुस्तकें एवं 4 मोनोग्राम प्रकाशित। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर के लिए लोक व आदिवासी शिल्पों, वस्त्र परम्परा एवं विस्थापन पर 10 फिल्मों का निर्माण। अनेक कला महोत्सवों का समन्वय।

''विकास संवाद'' के सहयोग से मध्यप्रदेश में विस्थापन व पलायन का विस्तृत अध्यययन/ इन विषयों पर तीन प्रकाशन, बचपन से विस्थापन, बुंदेलखण्ड : पलायन की निरंतरता और प्रलय से टकराते समाज व संस्कृति।

'स्वास्थ्य अधिकार मंच' के माध्यम से चिकित्सा क्षेत्र में व्याप्त व्यापक अनियमितताओं के खिलाफ संघर्ष। अवैध दवा परीक्षण (क्लीनिकल ट्रायल्स) के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में याचिका। पश्चिमी मध्यप्रदेश के अनेक जनसंगठनों के साथ सहयोग। देश के तमाम पत्र–पत्रिकाओं में लेखन। पुस्तिकाओं का संपादन।

वर्तमान में शोध व दस्तावेजीकरण का कार्य जारी है।

संप्रति : कार्यकारी संपादक, सर्वोदय प्रेस सर्विस, इंदौर
संपर्क : 9893278855
ईमेल : chinmay.saroj@gmail.com

Vikas Samvad

ISBN-978-93-81408-37-7